केरल ज्योति

जनवरी 2024

ISSN 2320-9976
UGC Care - List

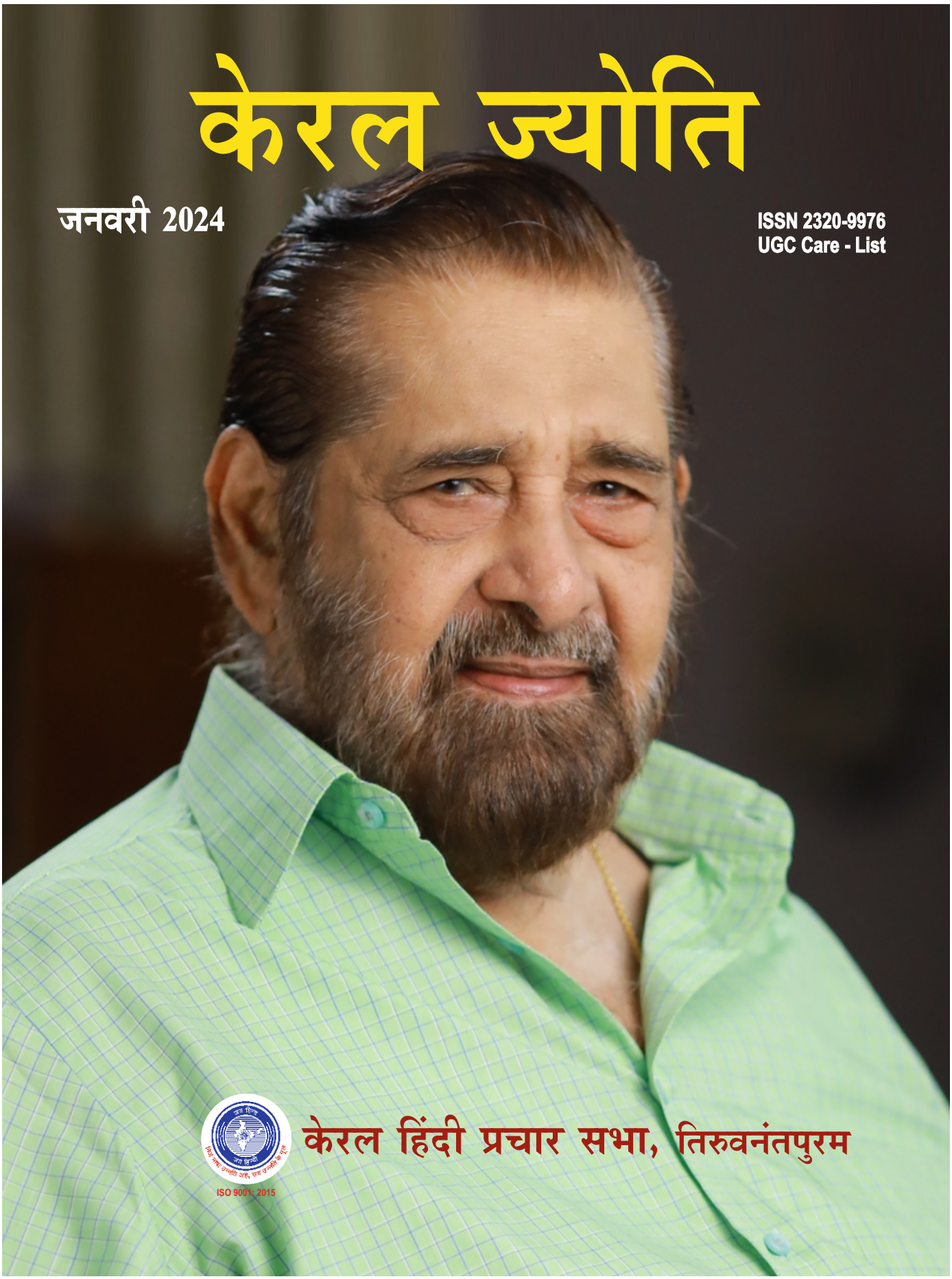

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम

ISO 9001: 2015

केरल ज्योति के मुख्य संपादक प्रो.डी.तंकप्पन नायर और केरल हिंदी प्रचार सभा के
मंत्री अधिवक्ता मधु बी द्वारा रचित पुस्तकें केन्द्रीय मंत्री श्री. वी. मुरलीधरन को भेंट कर रहे हैं।

आचार्य (B.Ed.) कॉलेज ऑफ टीचर एडूकेशन के छात्र-छात्राओं द्वारा मनाया गया 'क्रिस्तुमस' त्योहार के विविध दृश्य।

टाइपराइटिंग इंस्टिट्यूट के क्रिस्तुमस महोत्सव में
सभा के मंत्री, अध्यक्ष एवं कोषाध्यक्ष।

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर

परामर्श मंडल

डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक

प्रो डी तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 60 दल : 10 अंक: **जनवरी 2024**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

सारा जॉसफ की कहानियों में स्त्री की स्थितिः एक विश्लेषण– **डॉ. पूर्णिमा आर** 6

प्रदूषण में धधकती धरती गाथा – एकांत श्रीवास्तव की 'मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद' – **प्रिन्सी मात्यु** 10

'गेम्स' कहानी : वर्तमान घर का दस्तावेज – **ग्रीष्मा पी राजन** 12

पी. रविकुमार अपने काव्य–जीवन की पूर्णता की ओर **डॉ. ए.एम.उण्णिकृष्णन** 14

धर्म, विज्ञान और आम आदमी – परसाई की नजरिए में **डॉ. प्रदीपा कुमारी.आर** 15

'नरसिंह कथा' में प्रतीकात्मक युगचेतना – **डॉ. प्रकाश.ए** 17

बिखरे ख्वाब (कविता) – **अबिरामी जानकी** 20

पी.रविकुमार और उनका काव्य 'पट्टिनत्तार' 21

'सदेई' खण्डकाव्य : नारी–जीवन का दस्तावेज़–**डॉ.यमुना प्रसाद रतूड़ी** 24

जाति प्रथा की बेड़ियों में बंधे बचपनः चुनी हुई कहानियों के विशेष संदर्भ में **देवी कार्तियायिनी.एस** 30

हिंदी मलयालम की चुनी हुई कहानियों में मूल्यह्रास–**डॉ.जे अजिताकुमारी** 34

भारतीय संस्कृति : स्वरूप एवं विशेषताएँ – **डॉ.सुधा.टी** 36

'मुन्नी मोबाइल' उपन्यास में सामाजिक चिंतन – **डॉ.कविता मीणा** 39

कविता : अनोखी ख्वाहिश – **डॉ. बाबू.जे** 42

मधु काँकरिया की कहानियों में धार्मिक यथार्थ:विभिन्न आयाम–**अतुल्या.ए** 43

व्रज के भक्तिकालीन काव्य कवितावली का संदर्भ – **डॉ. के. श्रीलता विष्णु** 45

देवयानम् (आत्मकथा) **मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना** 50

वल्लभ विद्यानगर के सड़क पर और झोपड़ी में रहने वाले बच्चों की शैक्षिक स्थिरता के लिए बचपन एनजीओ के प्रयास पर अभ्यास – **डॉ. पायल भाटिया** 53

मुखचित्र : विश्वविख्यात अभिनेता पद्मश्री मधु

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 25/- आजीवन चंदा : रु. 2500/- वार्षिक चंदा : रु. 250/-

A /c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : मुख्य संपादक : 9995680289 संपादक : 7898515222
E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.com

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
जनवरी 2024

संपादकीय

विश्व हिंदी दिवस

पहले संपूर्ण भारत में हिंदी प्रेमियों द्वारा 1949 सितंबर 14 को राजभाषा जिवस के रूप में मनाया जाता था और आज भी ऐसा ही हो रहा है। जब से 10 जनवरी 1975 को नागपूर में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन हुआ था तब से प्रतिवर्ष 10 जनवरी को विश्व हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाने लगा। नागपूर के बाद विश्व के विभिन्न भागों के अलावा भारत में नई दिल्ली, भोपाल आदि प्रदेशों में भी विश्व हिंदी दिवस के सम्मेलन आयोजित हुए। भारत के अलावा अनेक विदेश राष्ट्रों में भी हिंदी भाषा का गौरवान्वित इतिहास है। जिन राष्ट्रों में भारतीय मूल वंश के लोग रहते हैं उन में भारतीय भाषाओं में से हिंदी का व्यवहार गौरव से होता रहा। प्रवासी भारतीयों ने भारतीय साहित्य और संस्कृति का प्रचार करने में उत्साह प्रकट किया है। रामचरितमानस इनमें से कई लोगों की नित्य पारायण की रचना बन गई। कहने का मतलब यह है कि हिंदी की व्यापकता और प्रसार विश्व हिंदी दिवस मनाने की स्थिति पहुँच गया। भारत की समृद्ध साहित्यिक और सांस्कृतिक जो परंपरा है उसकी महिमा एवं गरिमा की अभिवृद्धि के लिए विश्व हिंदी दिवस के सम्मेलनों में महत्व मिलता है। हिंदी प्रेम की भाषा है और सारी दुनिया को अपने सीने से लगाती है। यों हिंदी विश्व बंधुत्व की भावना का झंडा ऊँचा उडाती है। इसी भावना को लेकर हर साल जनवरी 10 को केरल हिंदी प्रचार सभा विश्व हिंदी दिवस मनाती है। इस संदर्भ में केरलज्योति परिवार गर्व का अनुभव करता है, इसलिए कि पिछले साल फिजी में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में केरल हिंदी प्रचार सभा के कर्णधार अधिवक्ता (डॉ) मधु.बी को सभा को प्रदत्त हिंदी सेवा पुरस्कार ग्रहण करने का अवसर मिला था। विश्व हिंदी दिवस के इस अवसर पर केरल के, भारत के एवं संपूर्ण जगत के हिंदी प्रेमियों को केरल हिंदी प्रचार सभा का अभिवादन!

प्रो.डी.तंकप्पन नायर
डॉ.रंजीत रविशैलम

सारा जॉसफ की कहानियों में स्त्री की स्थितिः एक विश्लेषण

डॉ. पूर्णिमा आर

प्रत्येक समाज में स्त्री की दशा और दिशा पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा संचालित होती रही है चाहें वह उत्तर भारतीय समाज हो या दक्षिण भारतीय। पुरुष कर्ता था, मालिक था, स्त्री गुलाम थी। स्वतंत्र रूप से वाद-विवाद-संवाद करने, सोचने-विचारने, समझने और लिखने की स्वतंत्रता से वह वंचित थी। उसे दोयम दर्जा प्राप्त था। जब स्त्री का अपना स्वत्वबोध जागृत होने लगा तो धीरे-धीरे पुरुष केन्द्रीयता में बदलाव आने लगा और स्त्री लेखिकाओं ने अपनी सृजनात्मक क्षमता के द्वारा समाज में बदलाव लाने का भरपूर प्रयास किया। समकालीन समाज की स्त्रियों की विभिन्न मानसिक स्थितियों का चित्रण मलयालम की जानीमानी लेखिका सारा जॉसफ की कहानियों में प्राप्त होता है।

सारा जॉसफ शोषित, दमित, दबी-कुचली स्त्रियों के शोषण का चित्रण अपनी रचनाओं के माध्यम से करती है। साराजी की विशेषता यह है कि वह अन्याय का मुखर प्रतिरोध वाणी से न कराके पात्रों के कर्मों द्वारा कराती है। वे पुरुष की सत्ता के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाती हैं और अलग खड़ी दिखती हैं। इनके कथा साहित्य में पारिवारिक संबंधों का सौहार्द, ऊष्मा, रीति-रिवाज़, पर्व-त्योहार, परस्पर सहयोग आदि प्रत्यक्ष रूप में प्रकट नहीं है। रचनाओं में वैचारिक तर्क-वितर्क इतने अधिक हैं कि स्त्री-पुरुष के मध्य अहम् की एक बड़ी दीवार खडी कर देती हैं जिसको फाँदने का प्रयत्न कोई करता ही नहीं।

सारा जॉसफ ग्रामीण पृष्ठभूमि में पली-बढ़ी हैं जहाँ पारिवारिक ढाँचा अधिक सबल होता है जिसके कारण स्त्री पर बंधन भी अधिक मज़बूत है। गाँवों में संयुक्तऔर विस्तृत संयुक्तपरिवारों का अधिक प्रचलन है। पूरा गाँव ही परिवार की ईकाई माना जाता है। अतः ठोस, सुदृढ़ पारिवारिक ढाँचा और संबंध स्त्री को स्वतंत्रता देने से परहेज करता है। ग्रामीण समाज की मान्यता है कि अगर स्त्री को स्वतंत्र छोड़ दिया जाए तो वह कुलटा और चरित्रहीन हो जाती है। इसीलिए स्त्री पर पहरेदारी ज़रूरी हैं ताकि परिवार की नाक और प्रतिष्ठा बची रहे। परिवार के इस रूढ़वाद को लेखिका ने कठघरे में खड़ा करके सवालों की भरमार की, कि क्या परिवार का उत्तरदायित्व सिर्फ स्त्रियों का है? स्त्री पर ही धर्म, नियम और कानून क्यों लागू है? हर सही-गलत निर्णय स्त्रियों पर ही क्यूँ थोपा जाता है? स्त्री मिट्टी का घड़ा और पुरुष पीतल की बटलोई क्यूँ है? क्यूँ बेटियाँ मारी जाती हैं? कभी कोख के अंदर तो कभी बाहर? क्या साँस लेने के लिए भी पुरुषों की अनुमति लेनी है? पुरुषवर्चस्ववादी समाज के वाहक पुरुष से वाद -प्रतिवाद -संवाद करती लेखिका अपनी कहानी में परिवार संस्था से जूझती जुझारू व्यक्तित्व की स्वामिनी नायिकाओं को गढ़ती है जो परिवार में रहकर ही अपने जीवन की नियंत्रक स्वयं बनती हैं और अपने निर्णय स्वयं लेती हैं। उनकी नायिकाएँ संबंधों के सूत्र तोड़ती नहीं हैं अपितु क्षत-विक्षत संबंधों के मध्य ही अपनी मंजिल ढूँढती है।

साराजी के अनुसार स्त्री पुरुष के बीच आकर्षण सहज, स्वाभाविक और सीधा रहता है। पुरुष के व्यक्तित्व से स्त्री और स्त्री के व्यक्तित्व से पुरु ष को अलग नहीं किया जा सकता। सारा जॉसफ की 'नालाम निलयिले जालकम' कहानी उस अकेलेपन और उब के बारे में है जो आधुनिक मानदंड एवं परिवेश के कारण व्यक्तिके जीवन में पैदा होती है, खासकर मध्यम आयुवर्गीय व्यक्तियों के। पच्चास वर्षीय 'अम्मिणियेट्टत्ति' की मुख्य समस्या गुस्सा है। संतानहीन दंपति होने की वजह से अकेलापन उनका हमराही है। अपनी घुटन भरी ज़िन्दगी से अम्मिणी तंग आती है। उसका पति, उससे बात ही नहीं करता। पुरुष का मौन उसे असहनीय लगने लगता है। पति-पत्नी के बीच दिन भर संवाद होता ही नहीं है और वह चुप्पी की हिंसा से पीड़ित है। उस पीड़ा से उसके स्वास्थ्य पर बुरा असर पडता है और वह दिन भर अपने आपसे बुदबुदाती रहती है। मानसिक एकांतता के कारण उसे हमेशा गुस्सा आता रहता है और वह बीमार रहने लगती है। अपने पितृसत्तात्मक दंभ के कारण पति उससे कुछ पूछता ही नहीं और न वह पति से कुछ बात ही कर पाती है। अंत में अम्मिणी के रक्तस्राव की बात सुनकर उसके पति को अत्यंत दुःख होता है कि उसकी पत्नी ने इसके बारे में उससे कुछ कहा ही नहीं। मानसिक यातनाग्रस्त संबंधों में स्त्री लगातार तनाव से

पीड़ित रहती है और इसके कारण उसका शरीर बीमारियों को बुलावा देता है। इसकी ज़बरदस्त उदाहरण है यह कहानी। वह डॉ.क्टरनी और मनोचिकित्सकों के पास जाकर अपनी निराशा का उल्लेख करती है और अपने आप मान लेती है कि उसमें ही कुछ कमी है और इस प्रकार हीनताग्रंथी की शिकार होती है। लेकिन बेचारी यह समझ नहीं पाती कि इससे उभरना उसके अपने हाथ में है। इस प्रताड़ना की पहचान के बिना ही स्त्रियाँ अपनी सारी ज़िन्दगी गुज़ारती है। सारा जोसफ ने सशक्त रूप से अम्मिणी को चित्रित करके समाज को चुप्पी की हिंसा से बचने की सीख दी है।

'ओरो एषुत्तुकारियुडे उल्लिलुम' कहानी को सारा जॉसफ ने अलग तरीके से चित्रित किया है जिसमें गृहिणी, एक लेखिका जो पारिवारिक बोझ से दबी है, ने अपने सपनों को व्यक्त किया है। इस कहानी का पुरुष पात्र पुरुषोत्तम अपनी पत्नी से अत्यंत कठोरता से सवाल करता है। उसका मानना था कि उसके बिना उसकी पत्नी जी ही नहीं पाएगी। इस प्रकार वह पुरुष सत्ता का अधिकार दिखाने की कोशिश करता है साथ ही अपने मन में इसी प्रकार के विचार निरंतर पालता रहता है। वह हमेशा अपनी पत्नी का अपमान करने का कोई भी मौका हाथ से जाने नहीं देता और उसे पागल करार देता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में अपनी पत्नी को झूठा और पागल कहना कमज़ोर पुरुषों का हथियार रहा है। इस प्रकार के पात्र अपने भीतर झाँकने से इनकार करते हैं और दूसरों को दोषी ठहराते हैं। पुरुषोत्तम इस कहानी में यही कर रहा है। आज़ादी की हवादार जगह पर लेखिका जाना चाहती है जो हर स्त्री की तमन्ना है। लेखिका अपने घर परिवार से छुटकारा पाना चाहती है। पति पुरुषोत्तम को जब इन बातों का पता लगता है तो वह अपनी पत्नी लेखिका को पागल मानता हैं। पारिवारिक जिम्मेदारियाँ उन्हें साहित्यिक चर्चा करने से रोकती है। वाद-संवाद के लिए लेखकों के घर जाने पर वे सिर्फ उसके पति से बातें करते है। इस कहानी के पति-पत्नी के बीच संवादात्मकता नहीं के बराबर है। लेकिन पत्नी को पति के लिए खाना बनाना पड़ता है जो कि पितृसत्ता द्वारा उसे दी गई ज़िम्मेदारी है। उसका किसी से बात करना पति को सुहाता नहीं है और पति अपने अधिकार का प्रयोग करता है जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था का सूचक है।

पत्नी अगर पति से ज्यादा कुछ बातें जानती है तो उसे नज़रअंदाज़ करना और पागल करार देना पितृसत्ता का एक और मुख है। सारा जॉसफ की 'स्कूटर' कहानी में इसी बात को उठाया गया है। देखने में पति-पत्नी एक आदर्श जोड़ा है। लेकिन दोनों के पारिवारिक संबंध सुस्थिर नहीं है। जब पत्नी के सौन्दर्य में कमी होने लगती तो पति ने उससे दूरी रखना शुरू किया। दोनों पहाड़ी पर चलते हैं तो अचानक स्कूटर बन्द पड़ जाता है। पत्नी बच्चों को ढ़ोकर थक जाती है। लेकिन पति इसे नज़रअंदाज़ करता है और पत्नी पर चिल्लाने लगता है। पत्नी जब बंद पडे स्कूटर को उठाने की कोशिश करती है और स्कूटर जब उठ जाता है तो स्त्री को अपनी जीत का एहसास होता है और वर्चस्ववादी दुनिया की ओर एक कदम आगे बढ़ने की खुशी होती है। लेकिन पति इसके विरुद्ध अपनी आवाज़ को तीखी कर उसका प्रतिरोध करता है और पुरुषसत्ता का अधिकार जमाता है।

सारा जॉसफ की 'दिनांतम' कहानी में एक दूसरे को समझे बिना साथ-साथ जीने वाले पति-पत्नी की दर्द भरी दास्ताँ है। इस कहानी का पति पुँवादी मानसिकता का शिकार है। छोटे-छोटे मुद्दों को भी उसके विरुद्ध की गयी साजिश मानता है और पत्नी की ज़िन्दगी मुसीबत में डालता है।

समकालीन स्वतंत्रचेता स्त्रियों ने पितृसत्तात्मक अंतर्विरोधों की कडी आलोचना की है। स्त्रियों के पहनावे में परिवर्तन, धार्मिक प्रतीकों में परिवर्तन हमारी संस्कृति के गहनतम परिवर्तन के द्योतक है। पितृसत्ता के मूल्यों ने सदियों से स्त्रियों को परंपराओं, रीतिरिवाज़ों के नाम पर अपने ढाँचे में जकड़ रखा है। दार्शनिक धर्माचार्यों और चिंतकों ने स्त्री के प्रति बहुत ही नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया था। आज भी स्त्री की अपमानजनक अवस्था यही दर्शाती है कि हमारी परंपराएँ स्त्री विरोधी हैं। स्वतंत्रचेता स्त्रियों ने अपनी हालत में सुधार लाने के लिए प्रतिरोध को हथियार के रूप में अख्तियार कर लिया है। उनका यह प्रतिशोध समाज के वर्चस्ववादी अंतर्विरोधों को सामने लाकर स्त्री स्वतंत्रता के लिए नया रास्ता खोल रहा है। सारा जोसफ ने अपनी कहानियों के द्वारा पितृसत्ता एवं स्त्री की स्वतंत्र विचाराभिव्यक्ति को प्रमाणित किया है।

'करुत्त तुलकल' का केन्द्र कथापात्र है मन्थरा। पौराणिक कथापात्र है। उसके व्यक्तित्व के माध्यम से समकालीन

समाज की माताओं की पीड़ा के खोखलेपन को प्रस्तुत करने में लेखिका सफल निकली। मंथरा स्वतंत्र विचार रखने वाली है, निडर है। वह कूटनीतिज्ञ भी है। लेकिन ज़िन्दगी में एक दिन मनुष्य की तरह जीने की उसकी इच्छा उसको अनीति करने की प्रेरणा देती है। कैकेयी भी उसकी भागीदार है। ये दोनों पात्र मन्थरा और कैकेयी सफल स्त्री पात्र है। स्वतंत्र सोच रखनेवाली है। पितृसत्ता के खिलाफ दोनों ज़बरदस्त प्रतिरोध करती है।

'पातालपडिकल' कहानी सारा जी के मातृत्व की एक और छवि दिखाती है। इस कहानी में नगर में मातृपूजा होती है जो माता के प्रति आदर का सूचक है। ईसामसी की माँ सिर्फ एक मूर्ति नहीं है एक स्त्री भी है। अच्छे-अच्छे कपड़ों से ढककर माँ को मातृदेवता बनाकर जुलूस निकाला जाता है। लेकिन पितृसत्ता से पीड़ित माँ का चित्र कुछ अलग ही है। यथार्थ में स्त्री को अपने परिवार का पेट भरने केलिए भरपूर मेहनत करनी पड़ती है। मज़दूरिन बनकर काम करना पड़ता है। भूख से विवश बच्चों के लिए खाना बनाना पड़ता है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को हमेशा कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। एक ओर उसे दुर्गा माँ, ईसामसीह की माँ, मेरी आदि के रूप में पूजा जाता है तो दूसरी ओर घर में दासियों से भी बदत्तर ज़िन्दगी जीनी पड़ती है। उसे पग-पग पर अपमानित किया जाता है। सारा जॉसफ 'पातालपडिकल' नामक कहानी में इसी समस्या को चित्रित करती है। पितृसत्ता में कमाउ पुरुष का प्रतीक रूप तो प्रचलित है पर कमाउ औरत का जिक्र विरले ही किया जाता है वही पूरे परिवार की देखभाल भी करती है। देवियों को पूजा तो जाता है। लेकिन पितृसत्ता के चलते घर परिवार में स्त्रियों का आदर सम्मान नहीं होता। उनसे हर संभव काम कराया जाता है। इस कहानी की माँ पूरे समाज के खोखलेपन का प्रतीक है। इसमें नगरपालक बेरहम और हास्यास्पद सरकार का प्रतिनिधित्व करता है। इस कहानी में मातृपूजा में पूजी जाने वाली माता पुरुषसत्ता की ही संतान है।

सारा जॉसफ ने अपनी कहानी 'छायापटम' में परिवार की रीढ़ की हड्डी 'माँ' का चित्रण और उसकी दर्दनाक स्थिति पर प्रकाश डाला है। एक कलाकार जिसका नाम चित्रन है, वह अपनी भावना के अनुसार माँ का चित्र खींचता है। इस चित्रकार की भावना माँ का चित्र खींचने में हमेशा अपूर्ण रह जाती है। पितृसत्तात्मक सोच द्वारा संचालित वर्चस्ववादी समाज में स्त्री को हर पल अपमानित किया जाता है। यह अपमान समाज द्वारा जाने-अनजाने होता रहता है। इस कहानी की नानी के पति का मानना है कि रोटी और कपड़े के अलावा औरत को और कुछ नहीं चाहिए। लेकिन स्त्री को पूरे घर की जिम्मेदारी सौंपी जाती है और उसे सब कुछ संभालना पड़ता है। स्त्री को, जन्म देनेवाले यंत्र के रूप में चित्रित करने के खिलाफ सारा जी इस कहानी के द्वारा प्रतिरोध करती है। इस कहानी की स्त्री पितृसत्ता के खिलाफ आवाज़ उठाती हैं। कलाकार जब इस स्त्री का चित्र खींचता है तो वह उसी धुरी पर अटका रहता है जो पितृसत्तात्मक समाज ने उसके दिमाग में ठूसा है। उसके बाप दाताओं ने परंपरागत तरीके से जो स्त्री का चित्र उसके मस्तिष्क में खींचना चाहा है वही चित्र कलाकार खींचता रहता है। स्वतंत्र विचार वाली, पुरुष शोषण का प्रभाव अपने पर विशेष प्रभाव न डाल पाने में समर्थ स्त्री का चित्र खींचना उसके लिए कठिन बन जाता है क्योंकि किसी भी चित्र रचना सिखानेवाली संस्था में इस प्रकार का चित्र खींचना उसे सिखाया ही नहीं, न उसके पास ऐसे रंग है जिनके द्वारा सटीकता से ऐसी स्त्री का चित्र खींचा जाय। जब स्त्री का चित्र पूर्ण होता है तो वह यथार्थ से बिलकुल भिन्न होता है। सारा जॉसफ जी इस कथा के ज़रिए पितृसत्तात्मक समाज में प्रतिष्ठित स्त्री के परंपरागत प्रतिमानों के खिलाफ प्रतिरोध जताती है। दरअसल पितृसत्ता द्वारा चित्रित स्त्री के बिंब से हटकर कोई भी पुरुष स्त्री का चित्रण चाहे वह कला की दुनिया में हो या यथार्थ की, कर ही नहीं पाता।

'प्रकाशिनियुडे मक्कल' सारा जॉसफ की एक और कहानी है जिसके पात्र पुरुषसत्तात्मक दृष्टिकोण से संचालित है। सभी प्रकार के अधिकारों को हथियानेवाले पुरुष का चित्रण इस कहानी में हुआ है। प्रकाशिनी जब बिन ब्याही माँ बननेवाली थी तो उसका गर्भपात करने के लिए वैद्य उपस्थित होता है जो पितृसत्ता के इंगितों से चलता है। प्रकाशिनी की माँ, बाप और दादी भी परिवार की अपकीर्ति के डर से गर्भ गिराने के पक्ष में है। लेकिन प्रकाशिनी बच्चे को जन्म देना चाहती है और पुंसत्ता के खिलाफ आवाज़ उठाती है। इस कहानी के द्वारा कहानीकार पाठकों को यह याद दिलाना चाहती है कि इक्कीसवीं शताब्दी में बच्चे को जन्म देना है या नहीं, यह पितृसत्ता ही तय करता है। लेकिन साराजी का मानना है कि यह अधिकार स्त्री को ही देना चाहिए।

ओडिञ पालम पितृसत्ता के खिलाफ आवाज़ उठाती सारा जी की एक और कहानी है। इसका केन्द्रीय विषय लड़कियों की सुरक्षा है। आज कल आए दिन बलात्कार होते रहते हैं और पुरुष शासित इस समाज में लड़कियों की स्थिति असुरक्षित है। यहाँ तक कि स्त्रियों का पार्थिव शरीर भी पुंवादी समाज में असुरक्षित है। बेटियों की सुरक्षा को लेकर माँ के मन की व्याकुलता को अत्यंत सूक्ष्मता के साथ कहानीकार ने इसमें चित्रित किया है। पुरुष की कामवासना का आधिक्य समाज में देखा जाता है और इसकी शिकार होती मासूम लड़कियों और स्त्रियों का चित्रण अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ सारा जी ने किया है। पितृसत्तात्मक समाज के शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाती माँ का चित्रण सारा जी की कहानियों की खासियत रही है।

'कन्यकयुडे पुल्लिंगम' कहानी में क्या कुंवारी, माँ बन सकती है सवाल का जवाब सारा जॉसफ देती है। इस कहानी के माध्यम से लेखिका घोषणा करती है कि कन्या शब्द का पुल्लिंग नहीं है। एक स्त्री अपने प्रेमी के बच्चे को जन्म देना चाहती है तो, उस बच्चे का पिता बनना पुरुषसत्ता के हित में नहीं है और न वह पुरुष को स्वीकार्य होगा। पुरुष केवल यौन सुख चाहता है। वह इतना स्वार्थी है कि सुख भोग के बाद किसी की भी जिम्मेदारी उठाना नहीं चाहता। यह मुख सिर्फ उसकी आत्मतुष्टि के लिए है। मिथकों में कन्या बच्चे को जन्म दे सकती है पर यथार्थ ज़िन्दगी में यह संभव नहीं। असल ज़िन्दगी में अगर कुँवारी माँ बनती है तो नैतिक मूल्यों का हवाला दिया जाएगा। जब एक कुँवारी, माँ बन जाती है, तो समाज उसे एक विशेष ढांचे के अंतर्गत सीमित कर देता है क्योंकि हमारा समाज पुंसत्ता के अनुसार ही चलता है। इसमें बच्ची की विवशता और माँ की विवशता को मार्मिकता के साथ दर्शाया गया है। अगर वह संतान लड़की न होकर लड़का होता तो शायद बेचा न जाता क्योंकि संतान लड़की है जो पितृसत्तात्मक सोच को नहीं सुहाती। इसलिए वस्तु मानकर उसे बेचा गया। कहानीकार समाज में प्रचलित लैंगिक असमानता और स्त्री वस्तुकरण के मुद्दे को उठाती है।

साराजी की मशहूर कहानी पापत्तरा में निरन्तर बच्चियों को जन्मनेवाली लक्ष्मिक्कुट्टी की मानसिक अवस्था का खुला चित्रण मिलता है। पितृसत्तात्मक समाज में बच्चियों का जन्म युक्तिसंगत नहीं माना जाता। संतान का लिंग पिता पर निर्भर है। फिर भी जब भी लड़कियों का जन्म होता है माँ को ही दोषी ठहराया जाता है। लक्ष्मिक्कुट्टी के साथ भी यही होता है। उसका पति प्रसूतिगृह के बाहर बच्चे के जन्म का इंतज़ार करता है। यदि लड़का हुआ तो उसे स्वीकार्य होगा और अगर लड़की है तो वह उसे मार देगा। लक्ष्मिकुट्टी अपने पति के इस व्यवहार से अत्यन्त दुःखी है। बहुत दर्द सहने के बाद जब बच्ची का जन्म होता है तो वह दुःखी होकर बच्ची को कहीं सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने की तरकीब सोचती है। अगर बच्ची के जन्म की खबर पति और उसकी सास को मिलेगी तो उस बच्ची की हत्या कर दी जाएगी। इसलिए वह अपनी दाई को रिश्वत (उसका मंगलसूत्र) देकर अपनी बच्ची को किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के लिए कहती है। पितृसत्तात्मक समाज के द्वारा शोषित लक्ष्मिक्कुट्टी की असह्य वेदना का चित्रण सारा जी ने अतीव सूक्ष्मता के साथ किया है। उसका पति कोच्चुनारायण और सांस पितृसत्ता के प्रतीक रूप है। कभी-कभी पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री ही स्त्री के खिलाफ खड़ी होती है। लक्ष्मिकुट्टी की सांस इसका उत्तम उदाहरण है।

सारा जोसफ ने स्त्री संबंधी समस्याओं को अपनी रचनाओं में भरपूर मात्रा में चित्रित किया है और समाज में महिलाओं के अधिकारों की मांग की है। साथ ही स्त्री अस्मिता को लेकर कई ऐसे सवाल उठाए हैं जिनके जवाब समकालीन समाज ही दे सकता है। पितृसत्तात्मक समाज के विरुद्ध आवाज बुलंद कर लेखिका ने मूक स्त्री-जात को अनीतियों के खिलाफ लडने की प्रेरणा दी है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

सारा जोसफिन्टें संपूर्ण कथकल सारा जोसफ,करन्ट बुक्स, त्रिस्सूर, दूसरा संस्करण जनवरी 2015, पृ.387

वही पृ.231 वही पृ.273

वही पृ.80 वही पृ.394

वही पृ.254 वही पृ.259

वही पृ 287 वही पृ 418

वही पृ 365 वही पृ 280

सहायक आचार्य
श्रीशंकरा विद्यापीठ महाविद्यालय
वलयंचिरंङ्गरा, पेरुंबावूर, केरल

प्रदूषण में धधकती धरती गाथा - एकांत श्रीवास्तव की 'मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद'

प्रिन्सी मात्यु

पर्यावरण का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। शुद्ध हवा, पानी, रहने के लिए भूमि सब कुछ हमें पर्यावरण से मिलता है। मनुष्य विज्ञान और विकास के नाम पर प्रकृति का लगातार विनाश करता जा रहा है। समकालीन हिंदी कविता में पर्यावरण को बचाने की चिंता प्रमुख है। समकालीन कविता प्रकृति के मोहक रूपों का चित्रण करने के साथ- साथ प्रकृति के विनाश के कारणों की भी पड़ताल करती है। समकालीन हिंदी कविता के प्रतिष्ठित कवि एकांत श्रीवास्तव ने इन स्थितियों को अपनी कविता में अभिव्यक्तिप्रदान की है।

'मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद' एकांत श्रीवास्तव का दूसरा काव्य संग्रह है। इस संग्रह की कविताओं में वैश्वीकरण और उसकी कोख में पलती क्षयोन्मुख होती प्रकृति, बिगड़ता मौसम, पर्यावरण संकट आदि का सम्यक चित्रण भी मिलता है। विश्व गाँव में होनेवाली वैश्विक तापन, वायु-प्रदूषण, वन-विनाश, वृक्षों का काटना, जल-प्रदूषण, बढ़ती गर्मी आदि कई पारिस्थितिक समस्यायें विभिन्न टंग से हिंदी कविता में देख सकते हैं। एकांत श्रीवास्तव ने इन पारिस्थितिक संकटों को अपने प्रदेशों के भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के अनुसार ही अपनी कविताओं में प्रस्तुत किया है।

मनुष्य की गतिविधियाँ, जैसे वनों का सफाया तथा पर्यावरण-प्रदूषण के कारण बाढ़ का प्रकोप बढ़ता है। समकालीन कवि एकांत श्रीवास्तव ने 'बांगलादेश' कविता में बाढ़ से होनेवाली मानवीय त्रासदियों की ओर इशारा किया है : "हमारे घर समुद्र में बह गए/हमारी नावें समुद्र में डूब गईं/हर जगह/हर जगह /हर जगह उफ़ान रहा है समुद्र/ हमारे आँगन में समुद्र का झाग/हमारे सपनों में समुद्र की रेत/अभागे वृक्ष हैं हम/बह गई/जिनके जडों की मिट्टी"[1]

भूमण्डलीकरण के दौर की एक गम्भीर चुनौती है- पर्यावरण प्रदूषण। आज नदी भी संकटग्रस्त है। पर्यावरण-प्रदूषण के प्रति आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कई आन्दोलन चल रहे हैं। उसमें प्रमुख है - 'नर्मदा बचाओ आन्दोलन'। एकांत श्रीवास्तव की कविताओं में प्राकृतिक वैविध्य एवं पर्यावरण प्रदूषण को बचाने की चिंता बार-बार दिखाई देती है। उन्होंने पर्यावरण समर्थक तथा नर्मदा बचाओ आन्दोलन की नेता मेधा पाटकर से प्रभावित होकर उनपर एक कविता लिखी है। जिसमें वे लिखते हैं- "समुद्र है तो बादल है/बादल है तो पानी है/पानी है तो नदी/नदी है तो बची हुई है मेधा पाटकर"[2]

प्रकृति का अमर्यादित उपभोग, वनों की कटाई, उद्योग- धंधों की भरमार, उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन, व्यापार, बाज़ार और इसी प्रकार का एक परिवेश बनता जा रह है जो प्रकृति, पर्यावरण, पृथ्वी और मानव जाति के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहा है। मनुष्य प्रकृति पर क्रूर व्यवहार करते हैं। इसके प्रति कवि ने अपना आक्रोश हस्ताक्षर कविता में व्यक्तकिया है - "सिर्फ एक हस्ताक्षर किया जाता है/और नीली पड़ जाती है धरती की देह/बुझ जाता है चाँद/सूख जाती हैं नदियाँ/अदृश्य हो जाते हैं हरे- भरे खेत"[3]

प्रकृति से मनुष्य का सम्बन्ध करोड़ों वर्षों से है लेकिन आज के युग में मनुष्य इस सम्बन्ध को भूले हुए हैं। मानव और प्रकृति के रिश्ते में बडी खाई पैदा हुई है। इसके फलस्वरूप मानव सहित ब्रह्माण्ड के सभी जीव-जन्तुओं को अनेकानेक पारिस्थितिक संकट भोगने पड़ते हैं। बाढ़, सूखा, आँधी, सुनामी आदि के बढ़ने में मानव का भी बहुत बड़ा हाथ है।

'कुटुंब' कविता में कवि ने अपने गाँव से बिछुड़ने

का दुख प्रकट किया है। भूख, दंगाः, अकाल, सूखा, बाढ़ और महामारी जैसे सभी कारणों से कुटुंब मरता है, यानी कुटुंब बिखर जाता है। वह कुटुम्ब ज़मीन है। वह भूमि जो मानव अतिक्रमण से नष्ट हो रही है। वसुधैव कुटुम्बकम वह विश्वास है जिसपर, हमारी संस्कृति टिकी थी। आज मानव उसी संस्कृति को मौत के घाट उतार रहा है।

"किसने मारा इस पूरे कुटुम्ब को/भूख ने? हत्यारों ने? दंगाइयों ने?/अकाल ने? सूखा ने? बाढ़ ने?/ किस महामारी ने मारा इस पूरे कुटुम्ब को"[4]

एकांत श्रीवास्तव के स्वप्न से उपजकर लिखी गई एक कविता है 'खोज'। इसमें वे लिखते हैं- "उधर कहाँ से उठ रहा है धुआँ/जैसे लगी हो आग/कहाँ से भागे आ रहे हैं लोग/तप रहा है ब्रह्माण्ड/मेरा गला सूख रहा है /मुझे पानी दो-पानी/कहाँ बिलम गए वे दिन ....!"[5]

'खोज' भूमण्डलीय उष्मीकरण में पृथ्वी के पिघलने के बारे में एक कविता है। कवि उन दिनों की खोज कर रहा है जब ब्रह्माण्ड बहुत सुंदर था। आज ब्रह्माण्ड सिर्फ गर्मी से पिघल रहा है। पृथ्वी जल रही है। नदियाँ सूख गई हैं। फूल मुरझा जाते हैं। कवि ब्रह्माण्ड में सबसे सुंदर दिनों की खोज करता है लेकिन केवल पिघलने वाली पृथ्वी को ही खोज पाया है।

आज पृथ्वी की स्थिति क्या हो गई है, इसका चित्रण करते हुए एकांत श्रीवास्तव दुःस्वप्न में पृथ्वी कविता में लिखते हैं - "सूखी हुई लहरें थीं रेत में/शंख, सीपी और घोंघे थे/एक पूरा समुद्र था सूखा हुआ/मगर पानी कहीं नहीं था/पेड़ थे मगर उनके पत्ते/बरसों पहले टूट चुके थे/सूखी टहनियों पर सूने घोंसले थे/और परिन्दे कहीं नहीं थे"[6]

पानी के बिना सूखा समुद्र, पत्तों के बिना पेड़, पक्षियों के बिना घोंसला, भूख से पीड़ित घर लेकिन कोई अनाज नहीं, पानी के बिना बादल - ये कवि की दुःस्वप्न की भूमि है। यह कविता एक स्पष्ट संकेत है कि पृथ्वी और परिदृश्य का अंतहीन अतिक्रमण और शोषण पृथ्वी का नेतृत्व कहाँ करेगा। खुद को प्रकृति से बड़ा बनाने की मनुष्य की लालसा उसे और उसकी धरती के विनाश की ओर ले जा रहा है। कविता और प्रकृति के बीच का संबंध हमेशा रहा है। समकालीन कविता की सबसे बड़ी खासियत उसमें निहित पारिस्थितिक बोध है। प्रकृति, पारिस्थितिकी और मनुष्य के बीच के आपसी तालमेल की आवश्यकता पर समकालीन कविता ज़ोर देती है। निसंदेह एकांत श्रीवास्तव समकालीन हिंदी कविता के पारिस्थितिकीय चिंतन की बुलन्द आवाज़ है।

जून 5 को पर्यावरण दिवस, मार्च 22 को जल दिवस जैसे प्रकृति के लिए हम कई दिन मना रहे है। दुःख इस बात का है कि ये दिन केवल आचरण हेतु रह जाते है और भूला दिए जाते हैं। साहित्य प्रकृति के लिए सम्बन्ध कोशिश कर रहा है, समाज को भी अपना कर्तव्य पूर्ण करने की अवश्यकता है। कोशिश यह होनी चाहिए कि पर्यावरण दिवस में लिए गए नारे केवल पर्यावरण दिवस तक ही सीमित न रह जाए। एकांत जी जैसे कवियों की भी यही कोशिश है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद एकांत श्रीवास्तव, पृ.सं. 17
2. वही, पृ.सं. 82
3. वही, पृ.सं. 83
4. वही, पृ.सं. 100
5. वही, पृ.सं. 84
6. वही, पृ.सं. 87

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग,
राजकीय महिला महाविद्यालय , तिरुवनंतपुरम

'गेम्स' कहानी : वर्तमान घर का दस्तावेज

ग्रीष्मा पी राजन

मानव राशि और प्रौद्योगिकी का संबंध विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण है। 1990 के उत्तरार्ध में प्रौद्योगिकी के विकास में गति आई थी। मोबाइल और इंटरनेट का आविष्कार इस विकास यात्रा का मील पत्थर कहना उचित होगा। 2007 में जब आई फोन का प्रयोग शुरु हुआ, उसके बाद इसके विकास में और भी तेजी आ गई। प्रौद्योगिक विकास का प्रभाव जिस तरह हमारे सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक क्षेत्र में हो रहा है, उसी प्रकार इसके जोखिम का भी प्रभाव पड़ता रहेगा।

हिंदी साहित्य में उत्तराधुनिक कहानियों में प्रौद्योगिकी से जनित समस्याओं का आँखों देखा वर्णन मिलता है। श्री अशोक कुमार की 'गेम्स' कहानी का मुख्य विषय बालजन के जीवन में प्रौद्योगिकी के बुरे असर पर है। 'कचरा फैक्ट्री' उनका कहानी संग्रह है, दुनिया फिल्मों की, इंस्टीट्यूट आदि उपन्यास हैं। अनेक कविताएँ और नाटक भी लिखे हैं, अधिकांश प्रकाशित है हिंदी समय के वेबसाइट में।

पारिवारिक स्तर पर तकनीकी का प्रभाव रिश्तों में दूरी पैदा करता है। प्रौद्योगिकी ने हमारे समय और आपसी संबंध को ठुकरा दिया है। कहानी में पैसा कमाने की आड में दौडनेवाले तरुण चोपडे और पत्नी के लिए बेटा नीलाभ और बेटी सोना का कोई महत्व नहीं है। माँ-बाप से होनेवाले नज़रअंदाज दोनों की राह भड़का देती है। बेटा पढ़ने से ज्यादा कंप्यूटर गेम्स खेलने, अपने कुत्ते ब्रूटो के साथ सैर करने में मजा ढूँढता है। साथ ही आई पैड या आई फोन पर फिल्म या सीरियल या सनी लिओन जैसी किसी स्टार की वीडियो देखने में लगी रहती है। वह सिगरेट से लेकर ड्रग्स तक का उपयोग भी करता है। बेटी भी केवल तेरह की उम्र में ही एकदम सारे के सारे शराबों से परिचित भी हुई है।

परिवार की नींव वहाँ के रहनेवालों के बीच का पारस्परिक प्यार, ममता, आदर, बात-चीत आदि पर निर्भर रहता है। इसलिए जब इनके बीच का संबंध एवं संपर्क नष्ट होंगे तब से परिवार का ताल मेल भी टूटेगा। इसके कारण परिवार के सदस्यों में बेईमानी, अनादर और बातचीत की कमी हो जाने की संभावना है। यह अविश्वास, निर्दोष गलतफहमी और अकेलापन पैदा कर सकता है। इस कहानी में पैसा ही राज करता है। तरुण चोपड़े के लिए पत्नी को दूसरे मर्दों के साथ मिलाकर भी फायदा उठाना है। तीन करोड के लिए वह पत्नी को मंत्री के साथ डिनर करने के लिए प्रेरित करता है। कोई चारा नहीं था, इसलिए पत्नी को पति के कहे अनुसार जाना पड़ा। वहाँ ऐसी मामला संभव हुई कि अचानक मंत्री जी की धडकन बंद हो जाती है। पर ये बात तरुण को फोन करके बताया तो कहा कि इसका एक फोटो ले लो अपने उपर नंगा लेटा हुआ।

अद्यतन पीढ़ी के लिए मोबाइल एक अवश्य साधन बन गई है। इसके लिए उत्तरदायी जरूर उनके माँ-बाप हैं। बचपन से लेकर वे हमारी प्रवृत्तियों का अनुगमन करते रहते हैं। हमेशा मोबाइल पर अटककर रहनेवाले माता-पिता के बच्चे कैसे मोबाइल का संबंध छूट सकता है। रोते बच्चे को शांत करने या खाना खिलाने के लिए मोबाइल का सहारा लेनेवाले जानबूझकर अपने बच्चे को तकनीकी की आड़ में गिरा देते हैं। कामकाजी माँ-बाप के लिए बच्चों के पास व्यतीत करने के लिए बहुत कम समय ही मिलता है। नौकरी की व्यस्तता से जूझनेवाले घर में आने के बाद मोबाइल के साथ रिफ्रेशमेंट के लिए समय निकालता है, अपने बच्चों के साथ नहीं। माता-पिता के लाड़ प्यार से वंचित रहनेवाले अपने अकेलेपन को दूर करने लिए मोबाइल गेम, सोशेल मीडिया आदि का सहारा लेते हैं। बच्चों को खुश कराने के लिए उन्हें सेपरेट एक मोबाइल भी मँगवा देते हैं। यह उसे नए-नए दोस्तों से जुड़ने का रास्ता खोल देता है। इसमें अजनबी लोग भी होते हैं। मासूम बच्चे न जाने उसके जाल में फँस जाते हैं।

प्रस्तुत कहानी में नीलाभ का चरित्र ऑनलाइन गेमों के घेरे में पड़े बच्चों का नमूना प्रस्तुत करता है। ऑनलाइन गेमों में बंदूकों का प्रयोग एक साधारण बात है। अधिकांश गेमों में शत्रुओं को मारने और जीतने जैसा होता है। नीलाभ को अपने बाप के बंदूक लेने और सेवक सेवाराम को उससे मारने सब गेमों के अनुसार ही होता है। गेमों में जो मारने की रीति दिखाती है, उसे करके डालने का प्रयत्न भी करता है। उसके अनुसार मारना भी केवल एक गेम है। लेकिन बेटे के इस करतूत के बारे में बाप का कोई घबराहट ही नहीं है।

गेमों के कारण नीलाभ की पढ़ाई में गडबडी आती है। इसके कारण वह अध्यापिका की डाँट का पात्र बना। उसकी प्रतिक्रिया इतनी भयानक थी कि उसने अध्यापिका को गालियाँ और धमकी देना शुरू किया। दूसरों से किस प्रकार का सद्व्यवहार करना चाहिए उन्हीं का आचरण घर से ही सिखाना है। सोच लीजिए कि गुरु से इस प्रकार का बर्ताव करने वाला किसको मानेगा? हाफ इयरली में फेल होने पर भी पिता उतना ध्यान देता नहीं है। पर माँ के कहने पर पिता विषय को गंभीर बनाता है। लेकिन नीलाभ को यह डाँट सह न सका। अपने क्रोध को संयम रखना भी उससे संभव नहीं था। हाथ में मिले किसी बर्तन को तोडकर पिता के गले पर रेत किया और बगल के ड्रावर से पिता का बंदूक निकालकर गोलियाँ चलाईं। पिता की मृत्यु के कसूर से भी वह पैसे के बल बच जाता है। नौकर सेवाराम पर पुलिस एफ.आई.आर तैयार करता है। उसके परिवार को पैसे देकर खरीद लेता है। खतरनाक गेमों के कारण ही मारने की प्रवृत्ति के बारे में बच्चे सीख लेते हैं। इस प्रकार पूरे परिवार का विनाश माँ-बाप के पैसा कमाने की चिंता और इंटरनेट के कारण संभव होता है।

सेलफ़ोन या इंटरनेट की अक्सेस बच्चों को तब तक न दें जब तक उसके बिना कार्य संभव न हो। साथ ही इन्हीं उपकरणों का प्रयोग बड़ों के सान्निध्य में या निगरानी में होना अच्छा होगा। मोबाइल के साथ लाने से लेकर बच्चों में अनेक बदलाव आने लगते हैं। पहले फोन को अपनी निजी वस्तु बनाता है और किसी का उसपर अक्सेस नहीं रहता। स्क्रीन लॉक और पासवर्ड से अपनी गोपनीयता कायम रखता है। बच्चों के लिए इतनी प्राइवसी बिलकुल नहीं चाहिए। इसलिए माता-पिता की निगरानी की जरूरत है।

2019 के राष्ट्रीय शिक्षा सांख्यिकी केंद्र के अनुसार 3-8 वर्ष के 95 प्रतिशत बच्चों को घर में इंटरनेट की सुविधा प्राप्त है। कोविड-19 के फौलाव इसे और भी बढ़ा दी है। कोरोना के हादसा के कारण निश्चल बनी शिक्षा प्रणाली को ऑनलाइन तरीका ने जीवंत कराया। इसलिए हरेक बच्चे के लिए मोबाइल और इंटरनेट सुविधा अवश्य बन गई। कोरोना काल की समाप्ति के बाद भी पुराने जीवन स्थिति में वापस जाना नामुमकिन हो गया।

मोबाइल में आनेवाले एसएमएस, ई-मेल या सोशेल मीडिया अपडेट अन्य प्रवृत्तियों से हमारा ध्यान विचलित कराता है। बच्चों की पढ़ाई में बहुत बाधा उत्पन्न होती है। कई परिवार, खाने-पीने की मेज़ तक मोबाइल को ले आते हैं। एक साथ रहकर खाने की आदतें नष्ट होती जा रही हैं। इन्हीं आदतों में परिवारिक बंधन बनाए रखता है। परिवारवालों को कम महत्वपूर्ण और मोबाइल रिश्तों को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। इसलिए मजबूत रिश्ते की कमी होती है। आजकल समाज में घर ही होते हैं, परिवार नहीं।

तकनीकी द्वारा छीन लिए गए हमारा समय और पारिवारिक वातावरण पर ध्यान देना अति आवश्यक है। इसके कारण संबंधों में शिथिलता आ गई। यह माता-पिता को बच्चों के पालन-पोषण करना, सलाह देना, सुरक्षा का ध्यान रखना, उसकी गतिविधियों एवं दोस्तों पर निगरानी, अच्छा व्यवहार सिखाना, मूल्यों के बारे में अवगत कराना आदि को कठिन बना सकता है।

शोध छात्रा(अंशकालिक)
सरकारी वनिता कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

पी. रविकुमार अपने काव्य-जीवन की पूर्णता की ओर

डॉ. ए.एम.उण्णिकृष्णन

पी. रविकुमार का तीसरा मलयालम काव्य है - पट्टिनत्तार। सन् 2022 ईसवीं में आपने इसकी सर्जना की थी। इससे पूर्व 'एम.डी. रामनाथन' और 'नचिकेतस' शीर्षक काव्य भाषा को रविकुमार की देन हैं। ये यथाक्रम सन् 2004 और सन् 2009 में प्रकाशित हुई थीं। लेकिन कृतियों के प्रकाशन से बहुत पहले ही उनके बीज अपने भीतर अंकुरित होने का खुलासा कवि ने किया है। नचिकेतस्सिन्टे पिरवी (नचिकेतस का सृजन) नामक अपने लेख में कवि संकेत देते हैं। 'नचिकेतस' नाम्नी काव्य मन में जन्म होकर फिर तकरीबन तीन दशकों के बाद ही उसकी रचना कर पाए हैं। 'एम.डी.रामनाथन' और 'पट्टिनत्तार' का अनुभव भी शायद और कुछ नहीं होगा। इससे द्योतित अर्थ है इस 'सप्तति' पार कवि का सुदीर्घ जीवन सदा ही काव्ययुक्त था।

कविता सदा ही शब्दों में उकेरने के भाव लहर नहीं हैं। वे ध्यानलहर के रूप में कवि मन में विलसित होने पर भी चल जाते हैं। उनसे समानद्रष्टा अपर मन में संक्रमण करना भी साध्य है। काव्य-जीवन की ऐसी भी एक संभावना रहती है। कविता का सृजन अंतर ही होता है बाहर नहीं है। लेकिन कवि का जीवन हमेशा इस तरह का ही रहेगा, ऐसा कह भी नहीं सकता है। सफल जीवन बिताने वाले चिंतन के गूढ़ द्वार पार करनेवाले ही होते हैं। उन कठिन यात्राओं को उडते मदार- बीज के समान लघु गान-सा रुचिर बनाने हेतु संगीतवीचियाँ उन्हें आशीर्वाद भी देती हैं। कैसे भी हो चिंतन, संगीत और कविता मिलकर "त्रित्व-पूर्णता का आशीर्वाद हमारी संस्कृति को मज़बूत करने का अन्यादृश वैभव अनवरत चलता रहता है। रविकुमार की कविताएँ उक्त सत्य का संकेत देती हैं।

हर खोज की प्रेरणा पूर्णता प्राप्त करने की जिजीविषा है। अपूर्णताएँ समझकर त्यागने का धैर्य अन्वेषण की सफलता प्रदान करता है। वास्तविक - रसानुभव तब साध्य होता है जब कोई अपनी अनुचित एवं अयोग्य वस्तुओं के संग टिके रहने की चाहत युक्त सॅवेदना को धिक्कारने में सक्षम हो जाता है। इसे प्राप्त करनेवालों को बाह्य केंद्रित आविष्कार एवं बाह्य से प्राप्त अभिनंदन आदि आवश्यक नहीं होते। फिर भी कारुण्यद्योतन हेतु कुछ सूचनाएँ शेष कर जाने का निर्णय वे लेते हैं। कला एवं दर्शन, जिनकी माँग ज़्यादा हैं, ऐसे ही उद्भूत होते हैं। बिना अन्यों की प्रेरणा प्राप्त, कालातीत हो वे ज़रूरतमंदों के पास पहुँच जाते हैं।

जीवन की सार्थकता खोजते हुए विभिन्न पीपल के पेड़ों में, व्यवहारों में सम्मिलित होने का गतकाल भी रविकुमार को है। उस दौरान मानो वे उद्भूत धिषणा से गर्व की छड़ी घुमाकर गमन करते थे। फिर भी सच्चाई की धवलिमा पाने योग्य दृढ़ ज़मीर भी मानव को था। इस जन्म से पहले के संकलन को समझना भी इस जन्म में समय नहीं होता। सांझ को दीया जलाकर उसके सामने बैठकर बड़ी बहनों द्वारा जपित ईश नाम व अन्य कीर्तन में परम सत्य घनीभूत हो पड़ा था। तमिल भाषा से जो खून का संबंध है उसमें अंतर्लीन संज्ञान शैवसिद्धों की वाणियों में प्रकाश्य प्रज्ञान ही है। सच्चाई की ओर खुली आँखों को बाद में सत्य तत्त्व में चुभाने हेतु करुणार्द्र आज्ञा बोधस्वरूप गुरुवर प्रोफ. जी बालकृष्णन नायर जी ने दी थी। कर्णाटक संगीत की ज्ञानवीचियों में व्यापृत एवं तमिल-संस्कृत भाषाओं में संग्रहीत विराट परम अर्थ सागर में स्नात विनम्र शिष्य को सद्गुरु ने सत्त में स्थिर कर दिया। उनसे बाद में कही बात के अनुसार साकार हुए थे रविकुमार की काव्यत्रयी। परिपक्व लोगों के एक ही सत्य की ओर तीन तरह ले चलनेवाले - वाङ्मय शिल्प काव्यसाक्षात्कारम, 'नचिकेतस्सिन्टे मुक्तिवचस' आदि शीर्षकों में यथाक्रम 'एम.डी.रामनाथन', 'नचिकेतस' नामक कृतियों को केंद्र में रखकर मैं पहले भी लिख चुका हूँ।

वास्तव में रविकुमार के आविष्कार की सच्चाई क्या है? इसे संक्षेप में अनुभूतियों को प्रदृष्ट करने के लिए मजबूरन लिखने वाली कविता कह सकते है। शायद उसमें कोई हानि नहीं है। वास्तव में ऐसी कृतियाँ कविता को मानवसत्त के चरम व्यवहार के रूप में परिवर्तित कर देती हैं। स्वाभाविक रूप में लौकिक आकांक्षाओं को तृप्त करनेवाले मनव्यापारों के आधिथ्य से ठीक दूरी बनाए रखती है। सत्त की खोज यहाँ पर सत्यान्वेषण के रूप में प्रौढ़ बन जाती है। – अनुवाद : डॉ. रंजीत रविशैलम

धर्म, विज्ञान और आम आदमी-परसाई की नजरिए में

डॉ. प्रदीपा कुमारी.आर

युगसापेक्षी लेखक युगीन सामाजिक विसंगतियों पर सटीक विचार करना दायित्व मानता है।परसाई की रचनाएँ इसी दृष्टी से समाज का दस्तावेज़ है।अनेकविद समस्याओं एवं सामाजिक विसंगतियों के सम्पूर्ण लेखा-जोखा प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त व्यंग्यकारों में श्री हरिशंकर परसाई किसी परिचय का मोहताज नहीं।वे 22 अगस्त 1924 से 10 अगस्त 1995 तक इस जगतवासी रहे और आजीवन मानवतावादी विचार के समर्थक रहे।उनका व्यंग्य जीवन के सभी विसंगतियों का भंडाफोड़ करता है, ऐसे सकारात्मक सर्जनात्मकता से वे मानव होने को व्याख्यायित करता है।वे हास्य-व्यंग्य लिखने के बारे में काफ़ियत देता है कि वे हर आदमी स्वस्थ रहने के इच्छुक हैं। उनका व्यंग्य लेखन पाठक को अभिरंजित ही नहीं करता,अपितु अवांछनीय कार्यों के एतराज संघर्ष के लिए मन को जागृत करता भी है।

परसाई का व्यंग्य चोट पहुँचाता है,या यूँ कहें कि आप डंके की चोट पर व्यंग्य करता है। लेकिन वे खुद को सुधारवादी नहीं मानते। सृजनधर्मिता का स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने लिखा है "मैं सुधार के लिए नहीं, बदलने के लिए लिखना चाहता हूँ, यानि कोशिश करता हूँ, चेतना में हलचल हो जाय,कोई विसंगति नजर के सामने आ जाय, इतना काफी है।"[1] उनकी दृष्टि में व्यंग्य एक स्पिरिट है, विधा नहीं ।

परसाई निष्ठावान थे और स्वयं को सदा मजबूत रखे।गर्दिश उनकी नियती थी,लेकिन वे निडर थे।स्वाभिमानी व्यक्तित्त्व एवं आस्थावान विचार के कारण संघर्षों से जूझने पर भी वे बेफिक्र रहे ।व्यक्तिजीवन की इन खूबियों की छटा उनके साहित्य पर भी पड़ी है।भारत की विशेष भूमिका में उत्क्रमित धार्मिक मान्यताएँ धर्म को विस्फोटक बना दी हैं।धर्म जैसे गंभीर विषय पर चर्चा एवं तटस्थ वैचारिक अभिव्यक्तिभारत की विशेष सांस्कृतिक माहौल में वांछनीय है,क्योंकि धर्म केंद्रित भारतीय जीवन में व्यक्तिके समस्त आचार विचारों को संचालित करने में धर्म की भूमिका सर्व विदित है।ऐसे माहौल में धार्मिक मामलों पर विशेष जागरूकता से वक्तव्य देने में वे सक्षम थे। ईमानदार लेखक परसाई अटल वाणी में कहता है कि धर्म की भूमिका हमेशा प्रगतिशीलता विरोधी रही है।मंदिर या मस्जिद को तोड़कर धर्म के प्रति लगाव झूठे गर्व दिखानेवालों से वे कहते है "पूजास्थल भव्य इमारत मात्र है।धर्म याने ईश्वर कहीं किसी इमारत में कैद नहीं।"[2] कार्ल मार्क्स के वाक्य -"धर्म आवाम के लिए अफीम है को नारा बनाकर झूठी फायदा लेनेवालों के सामने मार्क्स के विचार को ही दुहराकर वे निजी मन्तव्य को स्पष्ट रखना चाहते हैं-धर्म आत्महीन जगत में आत्मा की पुकार है।धर्म भ्रमात्मक सुख देता है जबकि मनुष्य को वास्तविक सुख चाहिए,जो सामाजिक परिवर्तन से आता है।"[3]

पनपती जातिवाद बेकार धार्मिक मान्यताओं का मिसाल है। निम्न और उच्च की कल्पना मानवतावाद से वंचित करते हैं। वे लिखती है इधर अगर कोई ब्राह्मण जूतों के पास बैठे चमार से कहें -चौधरी, इधर हमारे पास बैठो, तो वह जवाब देगा, अरे पण्डितजी, हमारा का धर्म नहीं है।बताओ भला, हमारो का जे धर्म है कि आपकी बराबरी से बैठें। पूर्व जनम में ऐसे पाप किये तो अब फल भोग रहे हैं। अब पाप करेंगे तो भगवान अगले जन्म में सजा दूँगा।"[4] स्वयं को वंचित समझने वाले इस मानसिक गुलामीपन पर व्यंग्य करके लेखक इशारा करता है कि इससे हमारी सामाजिक समानता की भावना भी संकटग्रस्त हो जाएँ, सदविवेक से मानव मानव को समझें यही सुझाव है। "यदि सचमुच ही अस्पृश्य माने जाने वाले लोगों का उद्धार करना चाहते हो तो आप उन्हें अपनी सामाजिक व्यवस्था में पूरी स्वतंत्रता और समानता दो ताकि वे अपनी प्रगति का मार्ग स्वयं प्रशस्त कर सकें।"[5]

भारत को एक धर्म निरपेक्ष देश घोषित करने के नाते ही धार्मिक कार्यों में राजनीति का हस्तक्षेप होने पर स्थिति खतरनाक हो जाती है।परसाई की राय में धर्म आधारित सांप्रदायिक राजनीति भारत के गणतंत्र की आपत्ति है।रामजन्म

भूमि और बाबरी मस्जिद का विषय सिर्फ घर्मावलंबियों से संबंधित आम बात थी।लेकिन राजनीति का हस्तक्षेप हो जाने पर ये सब हावी हो जाता है,आदमी आदमी के लिए रिपु हो जाता है। रक्तपात एवं लूटमार तक को भी लोग हिचकते नहीं। बाबरी मस्जिद के विषय पर भी हिन्दू वाँट मुस्लिम वाँट को बांटने की (कु) राजनीति की साजिश का प्रभाव पड़ा है।धर्मनिरपेक्ष शब्द के प्रचारक प्रमुख राजनीतिक दल चुनाव आने पर मतदाताओं के सामने एकमात्र बादा यह रखता है कि हम मस्जिद की जगह मंदिर बना देंगे ।इस अलोकतांत्रिक कूटनीति का लक्ष्य साम्प्रदायिक नफरत और आपसी संघर्ष की फायदा लेकर सत्ता या कुर्सी पर विराजमान होना मात्र है। देश की हवा में फैलते जहर से अवगत होकर लेखक समझौते के रूप में लिखता है- "..सरकार में साहस है तो दोनों को पुरातत्व विभाग को सौंप दे।"[6]

परसाई ने धर्म के और विज्ञान के छानबीन करके आपसी संबंध एवं संघर्ष के भिन्न तथ्यों को भी विचार का विषय बना लेता है।उनकी राय में धर्म ही संसार के सभी रहस्यों के पहला खबरदार है, आगे विज्ञान जब दूसरी व्याख्यायें देने लगा या तर्क उठाने लगा तो धर्म ने उस वैज्ञानिकों को मौत का भी सजा दी,जिसका इतिहास साक्षी है। धर्म और विज्ञान कभी पटरी नहीं बाँटी,कभी संघर्ष का रास्ता नहीं अपनाया।कुछ धार्मिक मान्यताओं का विरोध किया,पर धर्म के मूलतत्त्वों से नहीं।धर्म और विज्ञान का एक ही लक्ष्य है सत्य की खोज ।

परसाईजी निडर होकर साफ साफ लिखता है- "धर्म जड़ दृष्टी देता है,भाग्यवादी और अकर्मण्य बनाता है।जनता को शोषण के लिए तैयार करता है। शोषक के हाथ में धर्म हथियार है।"[7] उसका कलम धर्माचार्यों से भी नहीं डरते।इतिहास को मिसाल बनाकर उन्होंने लिखा है कि हर धर्म के आचार्य यह भ्रम पालते रहे है कि ज्ञान के वे ही स्वामी है। लेकिन वैज्ञानिक को कोई इल्हाम नहीं होता, वैज्ञानिक कभी किसी को पैगंबर या देवदूत नहीं कहता। विज्ञान तथ्य का प्रमाण प्रस्तुत करता है,किसी को स्वयंभू नहीं मानते। विज्ञान सदैव परिवर्तनरत रहेगा। वैज्ञानिक दृष्टि में कोई सार्वकालिक आप्तवाक्य नहीं। केवल निरीह कल्पनाओं पर पाली हुई व्यर्थ धार्मिक मान्यताओं को सत्य का शोध करके विज्ञान चुनौती देता है। अपने मंतव्य को स्थापित करने के लिए परसाई जी नेहरू के कथन को दुहराता है कि धर्म का जन्म डर और आज्ञान से हुआ। वैज्ञानिक खोज बहुत-सा अज्ञान नष्ट कर दिया, भय को दूर कर दिया। धर्म और विज्ञान सबंधित संतुलित विचार को अभिव्यक्ति देकर लेखक धर्म के नाम पर हो रही अनहोनीयतों की खिल्ली उड़ाते है साथ ही वैज्ञानिक हस्तक्षेप पर सामाजिक बदलाव की आशा प्रकट करते हुए विज्ञान से भी अनुरोध करता है कि सावधानी रखनी है कि विज्ञान तटस्थ होना चाहिए ताकि अभिशाप नहीं हो जाएँ।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1) सदाचार का तावीज़-हरिशंकर परसाई, पृ.11, भारतीय ज्ञानपीठ, 2004

2) हरिजन,मंदिर और अग्निवेश,पुस्तक-आवारा भीड़ के खतरे,हरिशंकर परसाई,पृ.21,राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,नईदिल्ली,

3) लेख-समाजवाद और धर्म;पुस्तक-आवारा भीड़ के खतरे,हरिशंकर परसाई पृ.28;राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,नईदिल्ली ,

4) परसाई रचनावली,खण्ड-4,खुदा से लड़ाई कि सजा से,पृ- 144,संपा.कमला प्रसाद

5) भारतीय साहित्य पर बौद्ध एवं अंबेडकर दर्शन का प्रभाव,लेखक-डॉ.जी.वी रत्नाकर;पुस्तक भारतीय साहित्य में धर्म और दर्शन के आयाम,संपा. डॉ.सैय्यद मेहरून,यमन प्रकाशन कानपुर, प्र.वर्ष-2014

6) लेख- हरिजन,मंदिर,अग्निवेश पुस्तक-आवारा भीड़ के खतरे, हरिशंकर परसाई,पृ.21, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,नईदिल्ली,

7) लेख-समाजवाद और धर्म,पुस्तक-आवारा भीड़ के खतरे,हरिशंकर परसाई,पृ.26,राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.,नईदिल्ली

असिस्टेंट प्रोफ़ेसर,
गवर्मेंट के.एन.एम आर्ट्स एण्ड साइंस कॉलेज,
काँजीरमकुलम, तिरुवनंतपुरम

'नरसिंह कथा' में प्रतीकात्मक युगचेतना

डॉ. प्रकाश.ए

सारंशः जनवादी साहित्य एक स्तर पर जनता की कर्मठता और संघर्षशीलता से प्रेरणा लेता है,दूसरे स्तर पर जनता को शिक्षित तथा जाग्रत करते हुए उसके आकांक्षित जीवन को समग्र चित्रमयता तथा पैनेपन के साथ प्रस्तुत भी करता है। अपने इस व्यापक और पुष्ट जनाधारित रचना-धर्मिता के कारण जानवादी-साहित्य किसी भी समय तथा किसी भी युग में शोषक शासक वर्ग के समक्ष चुनौती बन जाता है।

मूलशब्दः प्रतीकात्मकता,अधिनायकवाद, स्वेच्छाचारिता, रचना-धर्मिता, पक्षधरता

डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल एक रंगचेता समर्पित नाटककार है, आपकी 'नरसिंह कथा' नामक जनवादी नाटक पौराणिक कथा को प्रतिपाद्य विषय बनाकर प्रतीकात्मक ढंग से आधुनिक संदर्भ में लोकतांत्रिक मूल्यों के संरक्षण के लिए जनता को प्रेरणा देता है। मानवसभ्यता के क्रमिक विकास में शासक और शासितों के बीच के मतभेद की शुरूआत तब से हुई होगी जब से शासन व्यवस्था की स्थापना हुई होगी। शासन या सत्ता के विरूद्ध जो लोग खड़े होते हैं वे हमेशा जनता के पक्ष में रहेंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत के कुछ जनवादी नाटककार भारतीय शासन-तंत्र से पहले से ही असंतृप्त थे उन्होंने आपातकाल के दौरान और उसके बाद भी जनता के साथ खडे होकर सत्ता के मुखौटे को भी बेनकाब करने में ज़रा भी विमुखता नहीं दिखाई। श्री लक्ष्मीनारायण लाल ने देश के तद्युगीन राजनीतिक संकट की प्रतीकात्मक अभिव्यक्तिके लिए 'नरसिंह कथा' नाटक की रचना सन् 1975 में की थी। प्रतीकों के प्रयोग द्वारा सामान्य बात में भी कवि, विशिष्ट अर्थगौरव का समावेश कर देते हैं। प्रतीकों के प्रयोग से सूक्ष्म एवं विशिष्ट अनुभूतियों को सहज और ग्राह्य बना दिया जाता है। (हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली; डॉ.अमर्नाथ ;पृष्ठ-230) यह नाटक रंगभूमि पर प्रस्तुत होने से पूर्व ही प्रकाशित हो गया और आपातकाल के दौरान इसके प्रस्तुतीकरण में रुकावट आ गया क्योंकि यह नाटक आपातकालीन राजनैतिक, सामाजिक वातावरण में मौजूद अभिव्यक्ति हीनता की स्थिति की ओर संकेत करने के साथ प्रतीकात्मक ढंग से तानाशाही सत्ता के शासन के रवैये को उद्घाटित भी करता है।

पौराणिक कथा की प्रतीकात्मकता : 'नरसिंह कथा' नाटक के पाँच अंक होते हैं और ग्यारह पात्रों की इर्द-गिर्द में नाटक की कथावस्तु विकसित होती है। नाटक की कथावस्तु नरसिंह अवतार की वही पौराणिक कथा ही है,लेकिन आपात्काल की स्थिति में देश की शासन-व्यवस्था के स्वरूप और विविध कोनों से उभर आई सत्ताविरोधी विचारधाराओं के प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं का परिचय लेने के लिए 'नरसिंह कथा' की कथावस्तु का सक्षिप्त परिचय देना संगत है।

हिरण्य कशिपु, प्रह्लाद, शुक्राचार्य, हुतासन और कयाधू इस नाटक के प्रमुख पात्र हैं। हिरण्यकशिपु एक अत्याचारी शासक है,वह अपने आपको ईश्वर, संपूर्ण एवं सर्वशक्तिमान समझता है । वह अपने को राज्य का पर्याय बना देना चाहता है। हिरण्यकशिपु और कयाधू का पुत्र प्रहलाद ईश्वर का परम भक्त है । प्रह्लाद आमजनता का प्रेमपात्र और स्वतंत्रता-कामी भी है। वह आम जनता के साथ खड़ा होकर न्याय और सत्य की रक्षा के लिए अपने पिता का विरोध करता है। हिरण्यकशिपु का अत्याचार बढ़ता जाता है, जनता त्राहि-त्राहि करने लगती है। हिरण्यकशिपु की तानाशाही प्रवृत्तियों एवं निरंकुश शासन से त्रस्त होकर सारी जनता प्रह्लाद के पक्ष में आ जाती है। हिरण्यकशिपु प्रह्लाद को मारने के लिए अनेक उपाय करता है ।हिरण्यकशिपु की बहन होलिका, जिसे एक वरदान प्राप्त था कि वह आग में जल नहीं सकती है, प्रह्लाद को लेकर आग में बैठती है, परंतु प्रह्लाद बच जाता है। प्रह्लाद को मारने के लिए भेजी गयी विषकन्या भी अंत में प्रह्लाद का पक्ष लेती है और राजा के सारे करतूतों को अहितकारी कहती है। राजनर्तकी होने पर भी यह विषकन्या प्रह्लाद के सामने भक्तिभाव से झुक जाती है। प्रहलाद की माँ कयाधू और गुप्तचर विभाग का आला अफसर- वज्रदंत वे दोनों

मन से राजा का विरोध करते हैं, परंतु प्रत्यक्ष रूप में राजा की इच्छा के अनुकूल होने का दिखावा करते हैं। हुतासन गुरुकुल में प्रह्लाद का सहपाठी है। गुरु शुक्राचार्य की शिक्षा-रीति से और हिरण्यकशिपु के अत्याचार से क्रुद्ध होकर हुतासन ने शुक्राचार्य के गुरु कुल को आग लगा दी और वन में चला गया । राजगुरू शुक्राचार्य राजा के सारे कृत्यों को विशेषाधिकार मानता है। असंख्य लोग, जो हिरण्यकशिपु के बंदीगृह में कैद हैं, उन्हें मुक्ति दिलाने के लिए प्रह्लाद और हुतासन दोनों हिरण्यकशिपु के विरुद्ध षड्यंत्र रचते हैं। प्रह्लाद का वध करने के उपलक्ष्य में हिरण्यकशिपु के दरबार में एक समारोह का आयोजन हो रहा है। दरबार में हिरणकशिपु और प्रह्लाद के बीच तर्क-वितर्क चलता है। प्रह्लाद हिरण्यकशिपु की एकाधिकारवादी सत्ता एवं स्वेच्छाचारिता को धिक्कारता है और ईश्वर की सर्वव्यापकता एवं सर्वरक्षक रूप का समर्थन भी करता है। हिरण्यकशिपु प्रह्लाद के सारे वादों को नकारकर उसका वध करने के लिए उद्यत हो जाता है। इसी समय हुतासन खंभे के पीछे से नरसिंह-रूप धारण करके हिरण्यकशिपु के सामने प्रकट होता है। दोनों के बीच युद्ध होता है। अंत में नरसिंह अपने जांघ पर हिरण्यकशिपु को लिटाकर अपने नख से उसका वक्ष स्थल चीरकर वध कर देता है।

युगीन चेतना की प्रतीकात्मकता

युगद्रष्टा नाटककार तत्कालीन जीवन परिस्थितियों का अंकन करने के लिए नाटक में वैविध्यपूर्ण पात्रों का सृजन करते हैं। चयनित पात्रों के व्यवहार एवं संवादों से युगीन चेतना का परिचय वे पाठकों या दर्शकों को देते हैं। श्री लक्ष्मीनारायण लाल आपात्कालीन भारत के नागरिकों के राजनैतिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक्र जीवन के संघर्ष को उद्‌घाटित करने के लिए और संघर्षरत मानव की बहुविध मनोवृत्तियों की अभिव्यक्ति के लिए नाटक में ऐसे अनेक प्रकरणों का सृजन भी करते हैं कि जो प्रत्यक्ष रूप में पौराणिक है, लेकिन प्रतीकात्मक ढंग से प्रासंगिक है। युगीन चेतना एवं प्रासंगिकता को पहचानने के लिए विविध पात्रों एवं उनके चरित्र-वैचित्र्य पर ध्यान देना उचित है। क्योंकि पात्रों का संवाद ही उनके मनोव्यापार का द्योतक है।

अधिनायकवाद : 'नरसिंह कथा' में हिरण्यकशिपु एक ऐसा पात्र है उसे एक वरदान प्राप्त है कि वह दिन और रात में पृथ्वी और आकाश में, मुनष्य हो या पशु, अस्त्र-शस्त्र किसी से अवध्य है। वह पदार्थवादी, आस्थाहीन और प्रत्यक्षवादी संस्कृति का प्रतिनिधि भी है। भौतिकवादी चिंतन से अनुप्राणित हिरण्यकशिपु जनता के अधिकारों को भी खरीद-बिक्री की चीज़ समझता है। हिरण्यकशिपु का कहना है कि मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मैं सर्वशक्तिमान पृथ्वी, आकाश, पाताल में उड़ता हूँ। अणुविस्फोटक यंत्र है मेरे पास। सब को खबर मेरे पास। ऐसा क्या है, जो मैं नहीं बना सकता? निर्माण और विध्वंस का स्वामी हूँ मैं।'(नरसिंहकथा; लक्ष्मीनारायण लाल,पृष्ठ-41)1975 के आसपास जब भारत के प्रथम उपग्रह का विक्षेप,अणुविस्फोटन की सफलता और पाकिस्तान के विरुद्ध के युद्ध पर विजय आदि से अंतर्राष्ट्रीय जगत में भारत का सम्मान बढ़ा तब इसके साथ तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरागाँधी का आत्मसम्मान भी बढ़ा। यही संवर्द्धित आत्मविश्वास उन्हें बाद में कई अहितकारी एवं अधिनायकवादी कार्यप्रणालियाँ अपनाने की प्रेरणा देती रहीं। आपात्काल की उद्‌घोषणा उसकी अधिनायकवादी एवं अहंवादी दृष्टिकोण का दृष्टांत है। तानाशाही हिरण्यकशिपु का वक्तव्य है कि 'कहाँ है वह नमक-हराम प्रजा? जिसे मैंने दुर्भिक्ष से बचाया, जिसे मैंने सब तरह से रक्षा, सुख शांति दी। (नरसिंहकथा- पृष्ठ-56) हिरण्यकशिपु के संवाद एवं व्यवहार से साम्राज्यवादी या पूँजीवादी विचारों से युक्तएक अधिनायकवादी सत्ता का स्वर एवं स्वभाव प्रकट होता है।

तानाशाही बनाम मानववाद : नरसिंह कथा' में प्रह्लाद व्यापक जनचेतना का प्रतीक है। उसमें मानवतावादी दर्शन से अनुप्राणित लोकतांत्रिक चेतना देखा जा सकता है। वह हिरण्यकशिपु के आतंकपूर्ण व्यवहार एवं सत्तान्धता का निरूपण ही करता है। भारत के लोकतांत्रिक मान्यताओं एवं परम्पराओं का ध्यान देकर प्रहलाद कहता है कि "भारत देश, जो हमारी स्मृतियों में है। जो हमारे निश्वास, उच्छ्‌वास आशा, निराशा, हार-जीत,अंधकार-प्रकाश के क्रम में बँधा है। जहाँ शक्ति कभी अकेली नहीं रही। जहाँ शक्तिऔर सत्ता को कभी निरंकुश नहीं होने दिया गया, जहाँ शक्ति को कभी अकेली, एकांगी, नहीं रहने दिया। उसे सदा बाँधा है लोक से"(नरसिंहकथा;पृष्ठ-50) नरसिंह कथा

में प्रह्लाद का चरित्र तानाशाही क्रूर शासन के विरुद्ध जनता को जगाकर नयी आज़ादी की लडाई के लिए उन्हें कटिबद्ध करनेवाला नेता का प्रतिनिधित्व करता है । मुक्तिसंघर्ष के मार्ग में जनता को एक नयी विचारधारा प्रदान करनेवाला संयमित व्यक्तित्त्व प्रह्लाद में है इसलिए वह हिंसावादी की तीव्रता को और अहिंसावादी के लचीलेपन को नहीं स्वीकारता है ।

उत्पीड़ितों की आवाज़ : हुतासन इस नाटक में पहले अंक से अंतिम अंक तक वर्तमान रहता है। हुतासन शुक्राचार्य के गुरु कुल में प्रह्लाद का सहपाठी था।वह शुक्राचार्य की शिक्षा-रीति से नफ़रत करता है और तानाशाह हिरण्यकशिपु का समर्थन देनेवाले शुक्राचार्य के गुरुकुल को आग लगा देता है। हिरण्यकशिपु ने उस जंगल को आग लगवा दी जहाँ हुतासन रहता था। लेकिन प्रह्लाद ने हुतासन को उस जंगल से बाहर कर दिया और अपने साथ मिलाया। अंत में हुतासन प्रह्लाद के पक्ष में होकर तानाशाह हिरण्यकशिपु का वध करता है और नयी लोकतंत्र की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले क्रांतिकारी चेतानायुक्त हाशिएकृतों का प्रतीक है हुतासन।यह पात्र हमों याद दिलाता है कि पूँजीवादी लोकतंत्र में झूठ और लूट की स्वतंत्रता होती है और लुटेरों के बीच भाईचारा भी होता है। लेकिन बहुसंख्यक जनता के लिए समानता के अभाव में न सच्ची स्वतंत्रता होती है,न समाज में कहीं भाईचारा होता है। (भारतीय समाज में प्रतिरोध की परम्परा, मैनेजर पाण्डेय,पृष्ठ-202)

बिका हुआ बुद्धिजीवी - शुक्राचार्य

'नरसिंह कथा' के एक प्रमुख पात्र है शुक्राचार्य, उसके बारे में विद्रोही हुतासन का वक्तव्य देखें "शुक्राचार्य गुरु नहीं हिरण्यकशिपु का खरीदा गुलाम। शिक्षा के नाम पर हमारे चित्त में बर्बादी के बीज बोया। शूद्र और अनार्य के सिद्धांत गढे। अपने भूमि से हमें उखाड़ने के बीजमंत्र बोया। (नरसिंह कथा ;पृष्ठ 22) हिरण्यकशिपु के सारे तानाशाही करतूतों को शुक्राचार्य ऐसा समर्थन देता है कि 'राजा का हर कार्य विशेषाधिकार का होता है।" (वही ,पृष्ठ 42) प्रहलाद की माँ कयाधू शुक्राचार्य को गुरु शब्द के कलंक और 'आचार्य पद को पतित करनेवाले' मानती है। इस नाटक के अंत में शुक्राचार्य स्वयं अपने को बिका हुआ कहते हैं । आम जनता के विपक्ष में तानाशाही शासन, संस्कृति और विचारधारा के प्रति आत्म-समर्पण करनेवाले इन बुद्धिजीवियों को 'आवयविक बुद्धिजीवी (शब्द और कर्म,मैनेजर पाण्डेय,पृष्ठ-45) नाम से अभिहित करना उचित है।

संघर्षरत नारीत्व का प्रतीक- कयाधू : प्रहलाद की माँ कयाधू पुत्रवत्सलता एवं प्रजावत्सलता का प्रतिरूप है। इस नारी पात्र का विकास इस प्रकार होता है कि नाटक के प्रारंभ में वह पत्नी का परम्परागत निष्ठामय रूप धारण कर लेती है, बीच में प्रजातंत्र मूल्यों में आस्था रखनेवाली प्रगतिशील आदर्शयुक्त नारी हो जाती है और अंत में पति द्वारा दी गई यातनाओं एवं अत्याचार के विरुद्ध आक्रोश उठानेवाली विद्रोही नारी बन जाती है। अन्धविश्वास में उलझे तानाशाह हिरण्यकशिपु दोष निवारण के लिए घड़ेरूपी नवविवाहिता का वध करते समय कयाधू उस घड़े को बचा लेती है। कयाधू की दृष्टि में वह केवल मिट्टी का घड़ा नहीं वरन् अबोल और नासमझ प्रजा का प्रतीक है। कयाधू कहती है कि यह घड़ा गूँगी प्रजा, जिसे तुम जो चाहो नाम देते। जैसा चाहो वैसा काम लेते। काम के बाद इसे नष्ट कर देते, ताकि कहीं उस कर्म का कोई नामोनिशान न रहे। (नरसिंहकथा,पृष्ठ-40) कयाधू का चरित्र-निर्माण यह दिखाने के लिए किया है कि लोकतंत्र में समानता की स्थिति लाने में नारी की विशेष भूमिका होती है और मूल्यों की पुनःस्थापना के संघर्ष में स्वतंत्र रूप से भाग लेना नारी का भी कर्तव्य है ।

उपर्युक्तप्रमुख पात्रों के अतिरिक्त 'नरसिंह कथा' में और कुछ पात्र हैं। गुप्तचर विभाग का आला अफसर है वज्रदंत, जो भारत संघ के भीतर, राजनैतिक नेताओं के दाँव-पेंच को सहते, अपने कर्तव्यों को निभानेवाले सैनिक दल के अधिकारियों के मनोव्यापार को उद्घाटित करनेवाले प्रतीकात्मक पात्र है। जय और विजय, महारक्षक, नर्तकी, सैनिक आदि पात्र कथा की गति के अनुसार प्रमुख पात्रों के चरित्र में तीव्रता और व्यवहार में प्रखरता लाने में सहायक बन जाते हैं। इन पात्रों के संवाद से नाटक की गति में संवृद्धि और उद्देश्य में स्पष्टता आ जाती है ।ये पात्र 'नरसिंह कथा' के कथ्य को प्रभावशाली बनाने में अत्यंत सहायक भी है।

एक मिथकीय कथा को लेकर इतने वैविध्यपूर्ण पात्रों का चयन करने में नाटककार सफल हुए हैं। स्वर्गीय डॉ.जी.कमलाधरन जी के शब्दों में "आपात्कालीन परिस्थिति में जनता को तमाचा मारकर उठाने और नरसिंह की भाँति हिरण्यकशिपुनुमा शक्तियों पर टूट पड़ने को आह्वान इस मिथकीय नाटक द्वारा करने में डॉ. लाल सफल हुए है।"(आधुनिक हिंदी नाटकः मिथक का प्रयोग और प्रभाव, डॉ.जी.कमलाधरन,पृष्ठ-96)

निष्कर्ष : एक जनोन्मुखी-चेतना-संपन्न कलाकार के लिए वर्तमान यथार्थ की अभिव्यक्तिमें चमत्कारी प्रभाव लाने में मिथक का प्रयोग करना पैंतरेबाजी खेल है ताकि वह पाठकों को पंक्तियों के बीच पढने का अवसर देता है,साथ ही अपनी रचना-धर्मिता की पक्षधरता का स्पष्टीकरण भी करता है।

संदभग्रंथ

1. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ.अमरनाथ,राज कमल प्रकाशन 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग,दरियागंज,नई दिली-110002, सं-2018
2. नरसिंह कथा,डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल;लोकभारती प्रकाशन,15-ए,महात्मागाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, संस्करण 1987
3. भारतीय समाज में प्रतिरोध की परम्परा, मैंनेजर पाण्डेय ,वाणी प्रकाशन,,4695, 21ए दरियागंज,नई दिल्ली-110002,सं-201
4. शब्द और कर्म, मैंनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, सं 1997
5. आधुनिक हिंदी नाटक मिथक का प्रयोग,डॉ. जी.कमलाधरन, प्रणाम, मामम,आट्टिंगल, संस्करण 1995,

असोसियट प्रोफसर
हिंदी विभाग
सरकारी कॉलेज कार्यवट्टम
तिरुवनंतपुरम

कविता

बिखरे ख्वाब

अबिरामी जानकी

चाँदनी रात की शीतल छाया,
देखा था मैंने एक और सपना।
इस कड़ी धूप में सपने की धारा
मिलेगा मुझे यह नया सवेरा।

राह है मुश्किल, पर मंजिल सुहाना
देखा था सपना, उसे हासिल करना।
लोगों ने कहा तोड़ देगा ज़माना,
हर चीज़ का है चाहिए खजाना।

चाँद को हासिल करने की चाहत,
हारने की डर से न सोते न जागते।
लोगों ने दिखाया औकात मेरा
लगता है डर अब रात और अंधेरा।

बाँध दिया है पैरों पर जंजीरें
तोड़ा मरोडा सपनों को मेरे।
ख्वाबों का शहर हुआ सुनसान,
न रहा शेष चेहरे पर मुसकान।

बची थी सिर्फ एक अधूरी कहानी
जिसके मैं पीछे सदा है दीवानी
समेटा बिखरे ख्वाबों के टुकडे
दफना दिया इस दिल की कब्र में।।

प्रथमवर्ष की छात्रा
बी ए समाजशास्त्र
महात्मागाँधी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

पी.रविकुमार और उनका काव्य 'पट्टिनत्तार'

'पट्टिनत्तार' पी. रविकुमार का अद्यतन काव्य है। कवि, पत्रकारिता एवं साहित्य तथा संगीत के समीक्षक के रूप में उन्हें प्रशस्ति मिली है। उनके पूर्व रचित दो काव्य 'एम.डी. नाथन' एवं 'नचिकेतस' का अनुवाद केरल ज्योति पत्रिका में प्रकाशित हुआ है जब केरल हिंदी प्रचार सभा के पूर्व अध्यक्ष स्व. के.जी.बालकृष्ण पिल्लैजी केरल ज्योति के संपादक भी रहे। पट्टिनत्तार सहित रविकुमारजी की तीनों कृतियों का हिंदी अनुवाद प्रो.डी.तंकप्पन नायर द्वारा हुआ है।

'एम.डी. रामनाथन' काव्य का अनुवाद तमिल और अंग्रेज़ी भाषाओं में और नचिकेतस का अनुवाद अंग्रेजी, तमिल, संस्कृत और पॉलिश भाषाओं में भी हुआ है। पॉलिश भाषा की कवयित्री और शोधकर्त्री डॉ.अन्ना उर्बन्स ने नचिकेतस को आधार बनाकर पॉलिश भाषा में एक शोध ग्रंथ रचा है। साहित्यिक रचना में उनकी पत्नी एम. पद्मजा देवी का पूर्ण सहयोग व प्रोत्साहन मिलता रहता है। मुझे पूर्ण आशा एवं विश्वास है कि केरल ज्योति के सुधी पाठक पट्टिनत्तार काव्य का भी हार्दिक स्वागत करेंगे।

डॉ. रंजीत रविशैलम, संपादक

पट्टिनत्तार

उपक्रम

उन्मत्त बड़े हाथी ने छिपाया काठ को
काठ में बड़ा उन्मत्त हाथी छिप गया
पंचभूतों ने छिपाया ब्रह्म को
पंचभूत छिप गये ब्रह्म में।

व्याख्या : **काठ से निर्मित बड़े उन्मत्त हाथी को देखते समय हमें काठ नहीं दीखता। काठ को हाथी का रूप छिपा रखता है। यह हाथी नहीं है, काठ है इस ज्ञान में हम हाथी को नहीं देखते। सिर्फ काठ ही दीखता है। हाथी काठ में छिपता है। जब पंचभूतों से निर्मित इस विश्व को देखते है तब हम ब्रह्म (अखण्डबोध) को नहीं देखते। ब्रह्म को विश्व छिपाता है। इस जानकारी से कि ब्रह्म ही इस विश्व के रूप में दीखता है। हम सिर्फ ब्रह्म को ही देखते हैं, विश्व को नहीं देखते। विश्व ब्रह्म में छिप जाता है।**

(1)
ज्ञान की लहरों में

यह जान ले कि
एक बेकाम सुई भी
तेरी अंतिम यात्रा में
साथ नहीं आएगी !

ज्ञान की
लहरों में
तिरुवेण्काटन
झूमता है
परित्यागी बनकर
ज्ञान में जलता है
बन जाता है पट्टिनत्तार !

परमात्मा के
साक्षात्कार में
अस्तित्व की
आत्मज्योति में
पट्टिनत्तार का
'अहं' का भाव
छिप जाता है

रेशमी वस्त्र
नव रत्नमाला
हीरे की अंगूठियों और
रत्नजड़ित कर्णभूषण को
फेंक देता है
अकिंचन बन जाता है।

तूफान और
सागर की लहरों को पार कर
मरुतवाणन
वापस आता है -

मरुतवाणन लाया है
उपलों और चोकर से भरे
बड़े थैले -

तिरुवेण्काटन के
क्रोध में
तिरुवेण्काटन के
प्राणों का प्राण
मरुतवाणन
अप्रत्यक्ष होता है।

तिरुवेण्काटन
अपमान से सिर झुकाकर
अमर्ष से पाददिकेश काँपकर
उपलों में से एक उपला लेकर
जमीन पर फ़ेंकता है -

उपला टूटकर
बिखरता है

शिव... शिव!
यह कैसा इंद्रजाल!!
उपले से
नवरत्न
लगातार
छितराकर गिरते है।

चोकर से भरे थैलों में से
सोने के कण
बड़ी बारिश के रूप में
गरज के साथ गिरते हैं।

शिव!... शिव!
यह सपना है
या मतिभ्रम है?
या इंद्रजाल?
हे मेरा प्रियपुत्र!
मरुतबाणन!
तू कहाँ है?
तू माया होकर
छिप गया क्या?

शिवकला आँसू बहाती हुई
मरुतवाणन से सौंपा
छोटा संदूक
तिरुवेण्काटन के
हाथों में सौंपती है।

तिरुवेण्काटन
टूटे दिल से
संदूक खोलता है
संदूक में
एक बेकाम पुरानी सुई
और एक ताड़ का पत्ता!

तिरुवेण्काटन
काँपते करों से
ताड़ का पत्ता लेता है

ताड़ के पत्ते में
लिखित अक्षर
आवाज़ के रूप में परिणत होकर
ढिंढोरा बनकर
भीतर और बाहर
गूँजती है :

"एक बेकाम सुई भी
तेरी अंतिम यात्रा में
साथ नहीं आएगी!"

ज्ञान की
लहरों में
तिरुवेण्काटन
झूमता है
परित्यागी बनकर
ज्ञान में जलता है
पट्टिनत्तार बन जाता है!

(2)

पट्टिनत्तार घर छोडकर जाता है

मेरे सारे संबंध
और बंधन
कट गये हैं
मैं बन गया हूँ स्वतंत्र
मेरा मन
शून्य हो गया है
मान्यतायें
प्रतिष्ठा और आभिजात्य
कुल और गोत्र
असीम संपत्ति
मान और अभिमान
सुख और दुःख
छिप गये हैं
सब कुछ एक स्वप्नसदृश
समाप्त हो गया है

मैं सब लोगों से
बिदा ले रहा हूँ
तुम सब लोग
ध्यान करें शिव का
सब दुखों से
शिव मुक्त करेंगे तुम को।"

"ओह!....
मेरे प्राणनाथ!
मुझे छोड़कर न चलें
मैं भी साथ चलती हूँ
आपकी शुश्रूषा करती जीने को
मुझे अनुमति देनी चाहिए

आप की गोद में लेटती हुई
और आपका चेहरा देखती हुई
प्राणों को छोडने की
इच्छा है मेरी
आप छोडें नहीं मुझे
हे प्राणनाथ!"

"हे शिवकला!
समाप्त हो रहा है
हम दोनों का संबंध
आगे तेरी रक्षा
ईश्वर ही कर देंगे
मेरा यह चेहरा देखती हूई
तुझे प्राण नहीं छोड़ना है।
ईश्वर का चेहरा देखती हुई
तुझे प्राण छोड़ना है।
इस जन्म में
तू मेरी पत्नी
और मैं था तेरा पति -
तेरे द्वारा मुझे
इस जन्म में दिये गये
स्नेह और सांत्वना के लिए
तेरे प्रति धन्यवाद
किन शब्दों में प्रकट करूँ?
तू थी मेरे प्राण
तू थी मेरा सर्वस्व
तू ने मेरा संरक्षण
आँख की पुतली की तरह किया
तू भागीदार थी
मेरे सारे सुख-दुखों में
तू थी मेरी शक्ति
तू थी मेरा स्नेह

हे शिवकला!
मुझे बिदा दे -
हमारा संबंध
इसी के साथ
समाप्त हो रहा है।"

शिवकला
पट्टिनत्तर के पैरों तले
बेहोश हो गिर पड़ी!

"मेरा प्रिय लाडला बेटा!
तू अपनी माँ को छोड़कर
जा रहा है?
मेरे लिए आगे कौन है?
इस बुढ़िया को
तू ही था सब कुछ
तेरी गोद में लेटकर ही तो
मुझे आँखें मूँद करनी है न?
मेरी अंत्येष्टि
तुझे ही तो करनी है न?"
"माँ!
मेरी सिराओं में बहता है
माँ का दूध
माँ का असीम वात्सल्य है
मेरा यह शरीर।
जब से जन्म लिया मैं ने
तब से इस निमिष तक
माँ का निष्कलंक स्नेह
था मेरा शरण।
माँ की जगह रखने को
इस जगत में और कौन है?
लेकिन,
माँ! मैं जा रहा हूँ
माँ के अंतिम समय में
मैं आऊँगा-
तब तक मैं
यह नगर छोडकर नहीं जाऊँगा।
यह सच है!

माँ शिथिल होकर गिर पडी!
"मुझे अपने प्राणों से अधिक
स्नेह करनेवाले हे मेरे प्रिय
परिचारको!
तुम सब लोगों के प्रति जो आभार है
उसे कभी न चुका पाऊँगा
अगर मैं ने कभी तुम लोगों से
कभी स्नेहहीन दयाहीन
व्यवहार किया हो,
तुन्हारे मन को वेदनाजनक
कोई शब्द उच्चरित किया हो
तो मुझे क्षमा करो!
मैं तुम लोगों से बिदा लेता हूँ!

हे चेंतनार!
मेरी परछाई की भाँति
मेरा पीछा करनेवाले
वफ़ादार कारिंदा थे आप!

मैं आप से भी
बिदा लेता हूँ -

हे चेंतनार!
मेरे रेशमी वस्त्र
स्वर्णाभरण
नवरत्न
और सारा धन
तुरंत गली की तरफ़ फेंक दें!
जिनको चाहिए वे ले लें!
सारे धान्यागारों
सारे भण्डारों को
तुरंत खोल दें
सब कुछ ले लें गरीब लोग!

मैं बिदा ले रहा हूँ
अब तक के जन्मों में
मेरे कितनी कितनी जननियाँ
कितने कितने जनक
कितनी कितनी पत्नियाँ
कितने कितने पुत्र
कितने कितने जन्म -
मुझे कुछ भी मालूम नहीं है
आगे लेने पडेंगे
कितने जन्म?

(क्रमशः)

'सदेई' खण्डकाव्य : नारी-जीवन का दस्तावेज़

डॉ.यमुना प्रसाद रतूड़ी

शोध-सारः गढ़वाली साहित्य के चर्चित रचनाकार पं. तारादत्त गैरोला द्वारा रचित खण्डकाव्य 'सदेई' उत्तराखण्ड के पहाड़ी समाज, सांस्कृतिक विरासत तथा नारी जीवन का लिखित दस्तावेज है। इस अनूठी काव्यकृति में गैरोला जी ने हिमालय के गढ़वाल क्षेत्र में रहने वाली सदेई नामक एक पहाड़ी स्त्री के माध्यम से जीवन की व्याकुलता, मायके के प्रति स्मृति तथा अपने लिए एक भाई की कामना, जिसके लिए वह अपना सर्वस्व अर्पित करने के लिए उदत्त होती है, की करुण कथा बुनी है। वास्तव में 'सदेई' उत्तराखण्ड के पहाड़ी अंचल में रहने वाली स्त्री के जीवन की उन सभी इच्छाओं और कामनाओं को व्यक्त करने वाला काव्य है, जिसके लिए सदेई आजीवन तपस्या करती रही है। हिन्दी साहित्य में अस्सी के दशक से स्त्री विमर्श का जो नारीवादी आंदोलन चला है, उसकी पूर्व सीमारेखा के रूप में सदेई खण्डकाव्य में नारी जीवन के उन सभी पहलुओं को सामने रखा गया है। पहाड़ की विषम भौगोलिक परिस्थितियों तथा पुरुष प्रधान समाज के बीच सुदूरवर्ती क्षेत्र में ब्याही सदेई किस प्रकार अपने जीवन, घर-परिवार और परिजनों की खुशियों के लिए अपने शिशुओं का उत्सर्ग करने का प्रण लेती है, यही इस काव्य को भावोत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँचाता है।

संकेत शब्द : सदेई, औजी, दीसा-धियाण, खुद, चैती पसारा, सिलंग, अठ्वाड़, झालीमाली, अष्टबलि।

रचनाकार के विषय में : 'सदेई : जाग्रत-स्वप्न' के रचनाकार पं0 तारादत्त गैरोला हैं। उनका जन्म सन् 1875 ई. में गढ़वाल के टिहरी जनपद के अन्तर्गत बडियारगढ़ ग्राम में हुआ था। सन् 1905 ई. में 'गढ़वाल यूनियन' नामक संस्था द्वारा एक 'गढ़वाली' पत्रिका का संपादन कार्य प्रारम्भ किया। गैरोला जी ने गिरिजादत्त नैथानी तथा विश्वंभर दत्त चमोला जी के साथ मिलकर इस पत्रिका का संपादन का कार्यभार संभाला।"[1] हिन्दी साहित्य के बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के दो दशकों तक 'सरस्वती' पत्रिका जिस प्रकार हिन्दी साहित्यकारों के रचनाकर्म का प्रमुख केन्द्र बनी हुई थी, उत्तराखण्ड के गढ़वाल में कुछ उसी प्रकार की भूमिका 'गढ़वाली' नामक पत्रिका निभा रही थी। इस पत्रिका में गढ़वाली में कविताएँ, कहानियाँ, निबन्ध, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, डायरी तथा उपन्यास प्रकाशित किए जा रहे थे। इस पत्र का प्रभाव इतना व्यापक था कि गढ़वाली साहित्य के सन् 1901 ई. से 1919 ई. तक के कालखण्ड को गढ़वाली-युग के नाम से जाना [illegible]"[2] 'हिमालयन फोकलोर', 'सांग्स ऑफ दाद्दयाल' जैसे महत्वपूर्ण साहित्यिक कृतियों का सृजन करने वाले गैरोला जी की कीर्ति का मुख्य आधार 'सदेई' नामक खण्डकाव्य है, जिसका प्रकाशन सन् 1921 ई. में हुआ।

सन् 1971 ई. में तारादत्त गैरोला के सुपुत्र पण्डित नवीनचन्द्र गैरोला ने 'सदेई' की एक प्रति गढ़वाली साहित्य के सुधी समीक्षक शिवप्रसाद डबराल चारण को पुनः प्रकाशन के लिए हस्तगत की। सन् 1993 ई. में डबराल जी ने एक लंबी भूमिका के साथ इस रचना का पुनः प्रकाशन करवाया। इस भूमिका में उन्होंने 'सदेई' काव्य में उल्लिखित गढ़वाली समाज, उसकी परंपराओं तथा रचना के ऐतिहासिक परिदृश्य की विस्तृत रूप में चर्चा की है। प्रस्तुत शोध पत्र में उक्तपुनः प्रकाशित 'सदेई' के मूलपाठ का आधार ग्रहण किया गया है। गत 30 वर्षों में साहित्येतिहास के अध्ययन और लेखन की दृष्टि में परिवर्तन हुआ है। नए इतिहास दर्शन का मूल विचार है कि समाज के विकास में स्त्री से लेकर पुरुष और उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक सभी का समान योगदान है। सुमन राजे 'हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास' (सन् 2004 ई.) में इसी दृष्टिकोण के आधार पर लोकगीतों को महिला लेखन का साक्ष्य मानते हुए उसे इतिहास लेखन की परंपरा में सम्मिलित करने की जोरदार वकालत करती हैं।"[3] बदलते परिवेश में बदले दृष्टिकोण के साथ यह उस स्त्री की उपस्थिति को तलाशने का एक नया प्रतिमान है, जिसकी अभिव्यक्तियों को पुरुष-लेखन या यूँ कहें कि पुरुष-दृष्टिकोण के समक्ष सदा से हीन समझा गया। उसी दृष्टिकोण से प्रस्तुत शोध पत्र में 'सदेई' रचना के आधार पर काव्य की नायिका सदेई के व्यक्तित्त्व को उकेरने का प्रयास किया गया है। यूँ भी सदेई के चरित्र और व्यक्तित्त्व का पुनर्मूल्यांकन

इस बदलती दृष्टि के अनुरूप समय की मांग है।

औजियों के गीतों में सदेई : गढ़वाल में चैत के महीने औजी अथवा बादकी (ढोल दमाउ बजाकर अपनी आजीविका कमाने वाला वर्ग) द्वारा गाँव-गाँव प्रत्येक परिवार के प्रांगण में ढोल-दमाउ बजाकर सदस्यों (विशेषतः बहू-बेटियों) के मंगल की कामना की जाती है। यह परंपरा अनक वर्षों से चल रही है। इस प्रक्रिया में परिवार की 'दीसा-धियाण' के समक्ष वे शताब्दियों से चले आ रहे लोकगीतों को सुनाकर उनके मायके के कुशल समाचार सुनाया करते हैं। इन्हीं लोकगीतों में सदेई की कथा समाहित है। दीसा-धियाण इस अवसर पर उन्हें अपने मायके अथवा परिवार का संदेशवाहक मानती हैं। परिणामस्वरूप उनका उचित आदर-सत्कार करते हुए अन्न, वस्त्र तथा अन्य वस्तुओं के साथ-साथ नकद धनराशि भी दी जाती है। औजियों के द्वारा चैत माह में किए जाने वाले इस आजीविकोपार्जन की प्रक्रिया को 'चैती पसारा' कहा जाता है। पहाड़ की विषम भौगोलिक परिस्थितियों में जब आवागमन के सुलभ मार्ग नहीं थे, आने-जाने में अनेक दिन लग जाते थे, औजियों द्वारा किया गया यह कार्य अत्यंत पुनीत समझा जाता था। लोग भी प्रसन्नतापूर्वक अपना कर्तव्य समझकर उन्हें नेग देते थे। दूर-दराज के क्षेत्रों में ब्याही हुई बहू-बेटियों के लिए यह बड़ा हर्ष का पल होता था कि कोई तो उनके मायके अथवा क्षेत्र से आकर उन्हें माता-पिता, भाई-बहिन तथा अन्य परिजनों के कुशलक्षेम की सूचना दे रहा है। मायके की खुद (स्मृति) को शांत करने वाले व्यक्ति को सामने देखकर उनकी खुशी की कोई सीमा ही नहीं रहती थी। ऐसे क्षणिक सुख के पलों को प्राप्त करने पर वे औजियों को धन्य-धन्य कहे बिना नहीं रह पाती। औजी भी 'सदेई' के गीतों को सुनाकर उनकी खुद को शांत करते और उन्हें धन-धान्य से संपन्न होने का आशीर्वाद देते हैं। तारादत्त गैरोला ने इसी लोक परंपरा में औजियों के गीतों की इस मौखिक परंपरा से अपनी काव्य रचना 'सदेई' का निर्माण किया।"[4]

कथानक : पं. तारादत्त गैरोला ने लोक परंपरा से प्राप्त कथा को आधार बनाकर सन् 1921 ई. में सदेई गढ़वाली काव्य का सृजन किया। रचना के कथानक के आधार पर काल प्रवाह में अनेक वर्षों पूर्व पौड़ी गढ़वाल के राठ क्षेत्र में रहने वाली एक स्त्री सदेई का विवाह कर्णप्रयाग के कठैतों के गाँव चुला-कठूड़ में हुआ। सदेई अपने परिवार में अकेली संतान थी। मायके से ससुराल के बीच का मार्ग अत्यंत विकट और सघन वनों से आच्छादित था, जो अनेकों गाड-गदेरों, उतार-चढ़ाव भरा तथा हिंसक पशुओं से भरा था। विवाह के उपरांत उसके मायके से उसकी सुधी लेने के लिए बहुत लंबे समय तक उसके पास कोई भी नहीं पहुँचा और न ही उसे मायके को कोई समाचार या संदेश प्राप्त हुआ। परिणामतः अपने मायके की याद (खुद) में सदेई दुखी रहने लगी। इस दुख को शांत करने के लिए उसने घर के आंगन में सिलंग का एक पौधा लगया जो उसे हर पल मायके की याद दिलाता था। जब-जब उसे मायके की स्मृति परेशान करती, वह उस सिलंग के पौधे के समीप बैठकर अपने मायके के बारे में सोचती रहती।

चैत के महीने प्रकृति के उल्लास भरे वातावरण में उसकी ससुराल में अन्य बहुओं के बन्धु-बान्धव जब मायके से उनके लिए कलेउ और नए वस्त्र लाते तो सदेई का दुख और बढ़ जाता। इस व्याकुलता से संतप्त होकर सदेई अपने मायके की कुलदेवी झालीमाली से एक भाई के होने की कामना करती है। अपनी इस मनौती के पूर्ण होने पर वह पंडों नचाकर अठ्वाड़ (अष्टबलि) देने के साथ इष्टदेवी को प्रसन्न करने का संकल्प लेती है। कुलदेवी झालीमाली की कृपा से सदेई का एक भाई सदेउ पैदा हुआ। संपूर्ण कथानक में सदेई के पति का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। केवल उसके दो पुत्रों - उमरा एवं सुमरा का वर्णन मिलता है। इधर सदेउ जब 12 वर्ष का हुआ तो वह अपनी दीदी सदेई से मिलने की जिद करता है। अंततः मां से सदेई के लिए टाल्खी, घाघरी और आंगड़ी नामक वस्त्र को लेकर वह घने जंगलों और नदी-नालों को पार करता हुआ सदेउ कुछ दिनों के उपरांत अपनी दीदी सदेई से मिलता है।"[5] सदेई जब अपने भाई सदेउ को देखती है तो उसकी खुशी का ठिकाना नहीं होता। अपनी इष्टदेवी से मनौती की पूर्णता पर लिए संकल्प का निर्वाह करने के लिए वह अष्टबलि का आयोजन करती है।

सदेई जैसे ही अष्टबलि की परंपरा को संपादित करने के लिए तत्पर होती है, सहसा आकाशवाणी होती है कि देवी पशुओं की बलि से संतुष्ट नहीं होगी। इसके लिए

नरबलि की आवश्यकता होगी। ऐसी स्थिति में सदेई को अपने पुत्रों या भाई में से किसी एक की बलि देनी होगी। सदेई ने देवी की इच्छा के अनुरूप अपने दोनों पुत्रों को बलि स्वरूप देवी को भेंट कर दिया। अपने भाई के प्रति सदेई के इस अटूट स्नेह से देवी प्रसन्न होती है। वह सदेई से घर के अंदर जाकर देखने को कहती है। सदेई जब घर के अंदर प्रवेश करती है तो देखती है कि उसके दोनों बच्चे जीवित हैं और हँसी-खुशी पूर्वक खेल रहे हैं।

स्त्री-जीवन की त्रासदी : सदेई इस खण्डकाव्य की नायिका और संपूर्ण कथानक का मूल आधार है। उसका व्यक्तित्त्व संस्कृत काव्यशास्त्र में नायिकाओं के बंधे-बंधाए पैटर्न से नितांत भिन्न और अपरंपरागत है। वह एक ऐसी स्त्री है जिसने सामाजिक बंधनों और परंपरा के दबाव में अपने स्वप्न और इच्छाओं को तिलांजलि दे दी। यद्यपि संपूर्ण कथानक में सदेई के माता-पिता का कोई उल्लेख नहीं मिलता है, लेकिन यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध जाना सदेई के लिए संभव नहीं था। यदि ऐसा होता तो विवाह के लिए इतनी दूर कई दिनों के विषम भौगोलिक परिस्थितियों के बीच अवस्थित ससुराल का वरण शायद न करती। इतनी दूर विवाह होने के बाद भी उसका जीवन सुखी नहीं हो पाया। जैसा कि कथानक में उल्लेख मिलता है, ससुराल में आने के बाद भी उसका अपने मायके के प्रति स्नेह तनिक भी कम नहीं हो पाया। मायके की स्मृति की तीव्रता जैसा उल्लेख इस काव्य में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। मायके की स्मृति की जो पीड़ा सदेई के हृदय को व्यथित करती है, उससे पता चलता है कि ससुराल में उसे संभवतः बेटी का दर्जा प्राप्त नहीं हो पाया। यदि ऐसा होता तो इस वेदना को शांत करने के लिए सदेई प्रतीक स्वरूप अपने घर के आंगन में सिलंग के पौधे का आलंबन स्वीकार न करती। अपने वैवाहिक जीवन में वह संभवतः सास-ससुर और पति के प्रेम और स्नेह के लिए तरसती रही है। यह अलग तथ्य है कि कथानक में सदेई के सास-ससुर और पति का वर्णन अप्राप्य है। समाज की परंपराओं के बीच वह अपने जीवन में उल्लास के मधुर क्षणों को ढूँढने का प्रयत्न करती है, लेकिन यहाँ भी निराशा ही उसके हाथ आती है। चैत के महीने उसके ससुराल की अन्य महिलाएँ जहाँ अपने भाई के लाए उपहारों से प्रसन्न थीं, तो दूसरी ओर सदेई के भाग्य में ये सुख का पल भी नहीं था। कारण यह कि सदेई का अपना कोई भाई नहीं था। अब ऐसी स्थिति में कोई स्त्री सिवाय अपने रूठे हुए भाग्य को कोसते हुए फूट-फूट कर रोने के अतिरिक्त क्या कर सकती थी। मानो उसके स्वतंत्र अस्तित्व का कोई मोल नहीं है। इन सामाजिक परंपराओं और संस्कारों से मुक्तिपाने के मूल सिद्धांत को लेकर स्त्रीवादी आंदोलन स्त्री-मुक्तिके मार्ग पर प्रशस्त हुआ है। जिस परिवार और समाज में सदेई रह रही थी, उसने उसे एक मनुष्य इकाई के रूप देखा अथवा नहीं, यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसलिए आज से लगभग आठ दशक पूर्व सीमोन दि बोउवार कह चुकी हैं कि, "स्त्री पैदा नहीं होती, वह बना दी जाती है।"[6] समाज की इन नैतिक मान्यताओं, परंपराओं और संस्कारों के दबाव ने कभी उसे मनुष्य के रूप में नहीं देखा और न ही उसके अन्तर्मन में चल रही पीड़ा और उसकी तीव्रता से उत्पन्न टूटन को महसूस किया गया। स्वयं सदेई कहती है- "बार ऋतु बौड़लि बार मास,/आली व जाली जनु दांइ फेरो।/आई नि आई निरभाग मैं कू,/क्वी भी नि आई ऋतु मेरि दां त।"[7]

(भावार्थ- बारह ऋतुएँ बारह मास में लौट-लौटकर दईं रिंगाते हुए बैलों के फेरों की तरह आयेंगी और चली जायेंगी। मुझ भाग्यहीन के लिए तो कोई भी ऋतु खुशियों के पलों को लेकर नहीं आई)

उसकी स्थिति एक साधारण स्त्री की तरह है, जिसे मंगलेश डबराल के शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है- "सारा दिन काम करने के बाद/एक स्त्री याद करती है/अगले दिन के काम।"[8]

वैवाहिक जीवन का संघर्ष : सदेई खण्डकाव्य 05 परिच्छेदों में विभक्त है। जिसके प्रारम्भ से ही सूचना मिलती है कि सदेई एक विवाहिता स्त्री है। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, सदेई के ससुराल पक्ष के किसी भी व्यक्ति का उल्लेख इस संपूर्ण कथानक में प्राप्त नहीं होता है। सदेई के दैनिक जीवन के पलों, उसके आस-पास के वातावरण, उसकी मनःस्थिति, बदलती ऋतुओं, सामाजिक परंपराओं और संस्कारों के बीच उसके वैवाहिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। सदेई के व्यक्तित्त्व को भावात्मक स्तर पर प्रमुखता से उकेरने के लिए कवि ने अन्य पात्रों की सर्जना

को महत्व नहीं दिया है। सदेई की सबसे बड़ी पीड़ा है कि उसका कोई भाई नहीं है, वह अपने माता-पिता को उलाहना देती है, जिन्होंने उसे इतनी दूर ब्याह दिया है कि जहाँ उसे हर व्यक्ति अपरिचित प्रतीत होता है। इस नई जगह में उसे किसी भी प्रकार की आत्मीयता के भाव का अहसास नहीं हुआ है। वह केवल अपनी भाग्यहीनता पर विलाप ही कर सकती है-"लठ्याालि होलो निरभाग मेरो,/पीठि नि क्वी होयन भाइ बैणा।/करी पछिण्डी छउं धौली पार,/गाउँ विदेशी अर दूर देश।"[9]

(भावार्थ- हे मेरे भाग्यहीन जीवन, मेरे जन्म के उपरांत मुझे भाई अथवा बहिन की प्राप्ति नहीं हुई। इस पर माता-पिता ने धौली गंगा के पार इतनी दूर मेरा विवाह कर दिया। मेरे लिए ससुराल किसी विदेशी धरती की तरह है, जहाँ मेरे लिए हर व्यक्ति अपरिचित सा है। मायके से दूर इस अपरिचित जगह पर मेरे लिए जीवन निर्वाह करना कठिन हो रहा है।)

इस स्त्री जीवन में विवाह से पूर्व और उसके बाद भी उसे संपूर्ण जीवनभर सुख प्राप्त नहीं हुआ है। वह अपने भाग्य को कोसते हुए कहती है- "धिक्कार मैं कू, जनम ऽ कू मेरा,/कभी भी होयो सुख नी छ मैं कू।"[10]

(भावार्थः मेरे इस जीवन के लिए धिक्कार है। मेरे जीवन में हमेशा दुःख ही रहे हैं, कभी भी मुझे सुख का एक क्षण प्राप्त नहीं हुआ।)

सदेई मातृत्व सुख प्राप्त करती है। उसके दो छोटे-छोटे शिशु हैं, लेकिन उसके अन्तर्मन की पीड़ा को वही महसूस कर सकती है। बच्चों के जन्म के बहुत समय बीत जाने के उपरांत भी मायके से कोई उसकी सुधि लेने के लिए नहीं आया। ऐसी स्थिति में वह अपनी कुलदेवी माँ झालीमाली से अपनी विपत्ति का निवारण करने की प्रार्थना करती है-"जवान ह्वै ग्यूँ लड़क्वालि भी ग्यूँ,/मेरी करे कै न खबर न सार।/मैत ऽ कि देवी छइ झालीमाली,/मेरी सुणीयाल बिपत्ति भारी।"[11] अन्ततः इस ग्रामीण पहाड़ी परिवेश में प्रकृति ही उसकी वेदना को दूर करने का आलंबन बनती है। मायके की स्मृति को दूर करने के लिए सिलंग का पौधा लगाकर सदेई अपने परिजनों को याद करती है-"सदेइ की छै जनि मैंत डाली, बिस्रौण कू तैं खुद तैं न तन्ने।"[12]

वह ऊँचे-ऊँचे पर्वत शिखरों से नीचे होने की गुहार लगाती है। चीड़ के घने वृक्षों से अलग-अलग होने की प्रार्थना करती है, जिससे वह अपने माता-पिता का घर-आंगन देख सके- "हे उँचि डांड्यों तुम नीसि जावा,/घणी कुलायों तुम छांटि होवा।/मैं कू लगीं छ खुद मैतुड़ा की,/बाबा जि को देखण देश देवा।"[13]

(भावार्थः हे उंचे-उंचे पर्वत शिखरों तनिक झुक जाओ तुम्हारे पीछे ही मेरा मैत (मायका) है जिससे मुझे उसकी एक झलक मिल जाए। हे घणी (सघन) कुलाइयों (चीड़ के वृक्षों) तुम जरा अपने-अपने स्थानों से खिसक कर किनारे हो जाओ। मुझे अपने बाबा (पिताजी) के देश (घर) के दर्शन लेने दो। उसे देखने के लिए मेरा मन व्याकुल हुआ जाता है और हृदय फटता है।) मायके से आने वाली प्यारी पवन को अपनी माँ का रैबार (समाचार) सुनाने को कहती है तो बहते हुए गाड़-गदेरों और हिलांस तथा कफ्फू (पक्षियों) से कहती है कि तुम मेरे मैत (मायके) के गीत गाओ-"मैत ऽ कि मेरी तु त पौन प्यारि,/सुणौ तु रैबार त मां को मेरी।/गाडू गदन्यू व हिलांस कप्फू ,/मैत ऽ को मेरा तुम गीत गावा।"[14]

"जायसी विरचित पद्मावत में नागमती भी विरह जनित परिस्थितियों में इसी प्रकार प्रकृति से संबल प्राप्त करती है।"[15] एक विवाहिता स्त्री के लिए विरह की पीड़ा क्या होती है इसे नागमती और सदेई से बेहतर शायद ही कोई जान पाए। यह एक विचित्र आश्चर्य है कि "जायसी सोलहवीं शताब्दी में 'पद्मावत' के मानसरोदक खण्ड के अन्तर्गत विवाहोपरांत जिस पीड़ा का आभास कराते हैं"[16] बीसवीं शताब्दी की पहाड़ी अंचल की स्त्री उसकी प्रत्यक्ष भुक्तभोगी है। शताब्दियाँ बीत जाने के बाद भी सदेई के समान न जाने कितनी ही स्त्रियों को आज भी रूढ़ परंपराओं के बोझ को अपने कंधों पर ढोना पड़ रहा है। संभवतः यही कारण है कि स्त्रीवादी विमर्श में इस वैवाहिक संस्था पर तीव्र रोष प्रकट किया गया है, जो स्त्री के प्रति वस्तुपरक दृष्टिकोण अपनाता है। परिवार, समाज और परंपरा का यह बंधन ही स्त्री को एक इकाई के रूप में परिगणित करने के मार्ग की एक बड़ी बाधा है। सदेई (पहाड़ी स्त्री की जीवटता का प्रतीक) : संपूर्ण काव्य में सदेई अपने संघर्षों से पार पाने का प्रयत्न करती दिखाई देती है। जीवन और

समाज के बंधनों की कारा को तोड़ती हुई वह एक प्रगतिशील स्त्री के रूप में प्रस्तुत हुई है। इस खण्डकाव्य में उसके कर्म और भाव सौन्दर्य के दर्शन हमें निम्न रूप में प्राप्त होते हैं- मायके के जिस प्रेम और स्नेह की आकांक्षा प्रत्येक स्त्री को विवाहोपरान्त होती है, सदेई को वह अप्राप्य है। माता-पिता द्वारा इतनी दूर विवाह कर देने और वर्षों तक उसकी सुध न लेने की पीड़ा से सदेई का हृदय सदैव व्यथित रहता है- "प्यारी सदेई नि बुलाई मैत,/ब्वीं च वा या मरिगे नि सूणी।/खबर नि सार ऽ वख दूर देश।/संसो नि कर्दा वख जाण को क्वी।"[17]

(भावार्थ : उस प्यारी सदेई को विवाहोपरान्त किसी ने एक बार भी मायके नहीं बुलाया। किसीने उसकी खोज-खबर नहीं ली, वह जीवित है अथवा नहीं, किसीने सुनने और जानने की कोशिश नहीं की। मायके से इतनी दूर गई सदेई को पूछने वाला कोई नहीं है और न ही इतनी दूर जाने का साहस किसीमें है कि वह जाकर सदेई का हालचाल पूछता।)

वह अपने ससुराल में घर के आंगन में सिलंग के पौधे को मायके का प्रतिरूप मानकर अपना दुख कम करती है- सिलंग नीस ऽ सहदेइ बैठीं,/सुण्णी छ देखणी छ बण की बहार।/तैं मैति डाली मुँ सदानि औंदे,/खुदेड़ सैदी खुद बीसरौण।"[18]

(भावार्थ : सिलंग के पौधे के नीचे बैठकर सदेई प्रकृति की हलचल को देखती और सुनती रहती है। मायके का प्रतीक मानकर सदेई प्रतिदिन उस सिलंग के पौधे के समीप जाती और अपने मायके की खुद (याद) को भुलाने का प्रयत्न करती है।)

ससुराल में सास-ससुर और पति से अपेक्षित सहयोग और प्रेम की आकांक्षा की उम्मीद में भी सदेई को निराशा ही मिली। यदि ऐसा हो पाता तो संभवतः इतनी विरह-व्यथित न दिखाई देती। इस संदर्भ में सदेई ससुराल में किस प्रकार के कष्टों को सहन कर रही थी, इसपर कवि ने संपूर्ण कथानक में कोई प्रकाश नहीं डाला है। इसलिए अनावश्यक पिष्ट पेषण करना व्यर्थ होगा। सदेई की सबसे बड़ी पीड़ा भाई का न होना है- "मैं कू त नी छ कुछ और इच्छा,/समान भाई नि छ और क्वी भी।/देली तु जो यो बर आज मैं कू,/मैं देंउलो त्वै सरवस्व देवी।"[19]

(भावार्थ : मुझे अपनी नियति और कोई शिकायत नहीं है, सिवाय इसके कि मेरा कोई भाई नहीं है। हे मेरी कुलदेवी ! यदि तू मुझे एक भाई होने का वरदान देती है तो मैं अपना सर्वस्व तुझे अर्पित कर दूंगी।)

काव्य में प्राप्त सूत्रों के आधार पर देखें तो इसे सामाजिक परंपरा का दबाव कहना अतिशयोक्ति न होगी। स्वयं सदेई के शब्दों में इस दबाव को महसूस किया जा सकता है- "बसंत मैना सबका त भाई,/भेंटेण आला बहिण्यों कु अण्णी।/छीदी भुली मीलिक गीत गाली,/गला लगाली खुद बीसराली।/मैत्यों कि भेजी कपड़ों की छाल,/पैलीं दिखाली कनु से मिजाज।/लठ्यालि मेरो कुइ भाइ होंदो,/कलेउ लौंदो व दुरौंदो पैणा।"[20]

(भावार्थ- बसंत के महीने सभी स्त्रियों के भाई अपनी बहनों से मिलने के लिए आएँगे। भाइयों से मिलकर सभी दीसा-धियाण (बहू-बेटियाँ) अपने दुखों को दूर करेंगी और प्रसन्न होकर हँसते हुए गीत गाएंगी। मायके से माता-पिता द्वारा भेजे हुए कपड़ों को पहनकर सभी सुहागवंती स्त्रियाँ एक-दूसरे के मन ईर्ष्या उत्पन्न कर रहे होंगे। वसंत के ऐसे वातावरण में सदेई सोचती है कि काश मेरा भी भाई होता जो उसके लिए इसी प्रकार मायके कलेउ (कलेवा-मायके से अपनी बेटी तथा उसके ससुराल पक्ष के लोगों को भेजी जाने वाला मिष्ठान) लाता जिसे मैं प्रसन्नतापूर्वक गाँव के प्रत्येक घर में बाँटती।)

सदेई का दृढ़ प्रतिज्ञ एवं त्यागमयी रूप इस काव्य में सर्वत्र देखा जा सकता है। वह अपनी इष्टदेवी से भाई की कामना करती है, जो पूरी हो जाती है। 12 वर्षों के उपरांत जब उसका भाई सदेउ उससे मिलने आता है तो वह हर्ष से विह्वल हो जाती है। वह अपने भाई का पूर्ण आदर सत्कार करती है। लेकिन इसके साथ ही सदेई की परीक्षा की घड़ी भी निकट आ जाती है। उसकी कुलदेवी माँ झालीमाली उससे नरबलि मांगती है तो वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती है। एक तरफ वह भाई, जिसकी वह वर्षों से कामना कर रही थी तो दूसरी ओर उसके दुधमुहे बच्चे। अपनी कुलदेवी को दिया गया वचन सदेई के लिए धर्मसंकट हो रहा था। लेकिन उस पहाड़ी बाला ने अपने भाई को सुरक्षित रखते हुए अपने दोनां बच्चों का उत्सर्ग कर अपनी इष्टदेवी के चरणों में

अर्पित कर दिया। निराला की प्रलम्ब कविता राम की शक्तिपूजा में राम भी इसी प्रकार शक्तिकी आराधना में अपने नेत्रों को अर्पित करने के लिए तत्पर होते हैं, तो उनका सहज मानवीय सौंदर्य निखरकर हमारे समक्ष आता है।21 इतने कष्टों को सहन करने के बाद त्याग की इस भावना का प्रदर्शन कर सदेई भी जीवटता का प्रतीक बन जाती है। गढ़वाली कविता में पहाड़ी ग्राम्य जीवन-संस्कृति के बीच स्त्री का मर्मस्पर्शी चित्रण कर कवि गैरोला जी ने इस खण्डकाव्य को अमर बना दिया।

निष्कर्ष : कवि ने जैसा कि स्वयं उल्लेख किया है कि उन्होंने यह काव्य औजियों के गीतों के आधार पर सृजित किया है। यह इस बात का सूचक है कि गढ़वाली समाज में स्त्री जीवन अनेक संघर्षों और विषमताओं से घिरा है। गढ़वाली लोकगीतों में उल्लिखित स्त्रियों में से एक चरित्र सदेई के रूप में हमारे सामने प्रत्यक्ष होकर पहाड़ के ग्राम्य अंचल की स्त्रियों की पीड़ा से हमारा साक्षात् करवाता है। पारिवारिक और सामाजिक जीवन का निर्वाह करती सदेई के व्यक्तित्व में प्रेम, सांमजस्य, त्याग, ममता, उत्सर्ग तथा चरित्र की दृढ़ता के जिस रूप का निदर्शन प्राप्त होता है, वही गढ़वाली समाज की ग्रामीण स्त्री का सच्चा प्रतीक है। ग्राम्य संस्कृति की ऐसी बाला का चित्र खींचकर तारादत्त गैरोला अमर हो गए हैं। उनके साथी और हिमालयन फोकलोर की रचना करने वाले अंग्रेज पादरी ई.एस. ओकले सदेई के इस वर्णन को सुनकर द्रवीभूत हुए बिना नहीं रह सके।22

संदर्भ संकेत :

1. (क) सदेई : जाग्रत स्वप्न, शिवप्रसाद डबराल चारण (संपा0), वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा, गढ़वाल, द्वितीय संस्करण- सन् 1992, पृ: 02।

   (ख) गढ़वाली भाषा और व्याकरण, सुरेश ममगाईं, विनसर पब्लिशिंग कं, देहरादून, उत्तराखण्ड, प्रथम संस्करण- सन् 2019, पृ: 36।
2. गढ़वाल : इतिहास संस्कृति भाषा एवं साहित्य, सुरेश ममगाईं, साहित्य सहकार प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- सन् 2022, पृ: 253।
3. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, डॉ सुमन राजे, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण- सन 2004, प्रथम पृष्ठ।
4. सदेई : जाग्रत स्वप्न, शिवप्रसाद डबराल चारण (संपा0), वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा, गढ़वाल, पृ: 25।
5. वही, पृ: 11।
6. सीमोन-द-बोउवार, प्रभा खेतान (अनुवादक), स्त्री- उपेक्षिता, आवरण पृष्ठ, हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लि0, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- सन् 1998।
7. सदेई : जाग्रत स्वप्न, शिवप्रसाद डबराल चारण (संपा0), वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा, गढ़वाल, द्वितीय संस्करण- सन् 1992, पृ: 32।
8. पहाड़ पर लालटेन, मंगलेश डबराल, पृ: 21।
9. सदेई : जाग्रत स्वप्न, शिवप्रसाद डबराल चारण (संपा0), वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा, गढ़वाल, द्वितीय संस्करण- 1992, परिच्छेद-2, पृ: 33।
10. वही, परिच्छेद-2, पद सं0-15, पृ: 49।
11. वही, परिच्छेद-2, पद सं0-26, पृ: 33।
12. वही, परिच्छेद-1, पद सं0-01, पृ: 27।
13. वही, परिच्छेद-2, पद सं0-20, पृ: 32।
14. वही, परिच्छेद-2, पद सं0-21, पृ: 32।
15. पिय सौं कहेहु सँदेसरा, ऐ भँवरा ऐ काग।

    सो धनि बिरहै जरि तेहिक धुआँ हम लाग।

    - पदमावत : मूल और संजीवनी व्याख्या, वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी), तृतीयावृत्ति-2037 वि0सं0, नागमती-वियोग-खण्ड, कड़वक-349/8-9, पृ. : 422। बरिस देवस धनि रोइ कै हारि परी चित झाँखि।

    मानुस घर घर पूँछि कै पूँछै निसरी पाँखि। - वही, नागमती-वियोग-खण्ड, कड़वक-357/8-9, पृ.: 434।

17. सदेई : जाग्रत स्वप्न, शिवप्रसाद डबराल चारण (संपा.), वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा, गढ़वाल, द्वितीय संस्करण- 1992, परिच्छेद-3, पद सं.-18, पृ: 38।
18. वही, परिच्छेद-2, पद सं.-17, पृ: 31।
19. वही, परिच्छेद-2, पद सं.-28, पृ: 33।
20. वही, परिच्छेद-2, पद सं.-23-24, पृ: 32।
21. अनामिका, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, भारती-भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण- 2005 वि0 सं., पृ.: 163-164।
22. गढ़वाल : इतिहास संस्कृति भाषा एवं साहित्य, सुरेश ममगाईं, साहित्य सहकार प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2022, पृ: 254।

असिस्टेण्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

ब.ला.जु. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय पुरोला - उत्तरकाशी (उत्तराखण्ड)

ई-मेल : ypr3879@gmail.com

मोबाइल नं. - 7895180110

जाति प्रथा की बेड़ियों में बंधे बचपनः चुनी हुई कहानियों के विशेष संदर्भ में

देवी कार्तियायिनी.एस

जाति प्रथा को हम हमारे सामाज का एक नकारात्मक पक्ष मान सकते हैं, जिससे समाज बेवजह दो हिस्सों में बंटा, जबकि असल में दोनों पक्षों में इंसान ही हैं। लेकिन कुछ परंपरागत रूढ़ियों ने लोगों के बीच यह वहम पैदा की कि उच्च वर्ग वाले और निम्न वर्ग वाले ऐसे दो वर्ग होते हैं। जाति प्रथा की शुरुआत काम के आधार पर ज़मानों पहले शुरू हुई थी। निम्न प्रकार के काम करने वाले या खेतीबाड़ी करने वाले निम्न वर्ग बन गए। एक प्रत्येक काम की सिलसिला जब पीढ़ी दर पीढ़ी होने लगे तब उस परिवार वाले एक जाति वाले बनते चले गये। आगे चलकर उस परिवार में जन्म लेने वाले हर व्यक्ति उस जाति वाला होता गया और बाद में परंपरागत काम धंधा छोड़कर अन्य कामों को अपनाने पर भी लोगों के लिए जाति तो पुराना ही बना रहा। यह बात आज या कल की नहीं सैकड़ों हजारों साल पहले की है। तभी तो हमारे इतिहासों एवं पुराणों में दलितों का चित्रण व संघर्ष पाए जाते हैं।

जब हम जाति प्रथा की गहराइयों तक जाते हैं तो इस बात से हम वाकिफ हो जाते हैं कि यह केवल एक पहलू वाला सिक्का है, क्योंकि हमें इसका नकारात्मक पक्ष ही मिलेंगे। जाति प्रथा जैसी कुप्रथा से किसी को कोई गुण या लाभ तो नहीं मिलता, साथ ही इससे दलितों का भरपूर शोषण भी होता है। समाज में दलितों को शायद इंसान होने का दर्जा नहीं मिला है। तभी तो उन्हें छूने से उच्च वर्ग वाले अछूत हो जाते हैं। जाति प्रथा के बारे में कहें तो यह एक प्रकार का सामाजिक नजरिया है। वह है उच्च वर्ग वालों को अपने आपको श्रेष्ठ और निम्न वर्ग वालों को अपना गुलाम समझने की। अवर्ण या सवर्ण होकर जन्म लेना किसी भी इंसान की बस की बात न होने पर भी सवर्ण वाले अपनी सवर्णता पर दंभ भरते हैं और अवर्ण वाले अपनी लाचारी और बेबसी को कोसते रहते हैं।

मानव जाति ने अभी तक विकास की अनगिनत पड़ावों को छू लिया है और अभी भी नएं विकास की ओर उन्मुक्त है। लेकिन कुछ ऐसी रूठीगत मुद्दे हैं जो शायद लोगों के लहू में लीन हो गए हैं। उसमें एक है दलितों के साथ आज भी बरती जाने वाली अमानवीय व्यवहार। शिक्षा पाकर ज्ञानी बनने वालों को अंदर ही अंदर पता होता है कि उच्च निम्नवाले जैसे भेद भाव की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन लोग इसे अपनाने में विमुखता दिखाते हैं। हिंदी साहित्य के पुराने पन्नों में भी दलितों की दीन दशा तथा उनके उद्धार पर प्रकाश डालने की कोशिश हुई है। रैदास, कबीर दास आदि से लेकर ओमप्रकाश वात्मीकी और मोहनदास नैमिशराय तक अनेकानेक हस्तियों ने दलितोद्धार पर बात की। अंबेडकर, ज्योतराव फुले जैसे नेताओं ने अपना सशक्तपरिश्रम जाति प्रथा को मिटाने के लिए किया। लेकिन आज भी प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में जाति सबके अंदर ही अंदर बसी है।

साहित्य हमेशा अपने वर्ण्यविषय के रूप में लोगो की ज़िंदगी को अपनाया है। समाज प्रगति की राह पर होने पर भी दिन प्रतिदिन सिर्फ ठोकरें खानेवाला एक समूह है दलित। इसलिए आजकल साहित्य क्षेत्र में दलित साहित्य के नाम से भी एक कोटि है जिसमें कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा, जीवनी जैसी विधाएं लिखी जाती हैं। दलित साहित्य के बारे में डॉ. एन सिंह का कहना है "दलित साहित्य दलित लेखेकों द्वारा लिखित वह साहित्य है जो सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और मानसिक रूप से उत्पीड़ित लोगों की बेहतरी के लिए लिखा गया हो जो सच्चे अनुभवों पर आधारित हो और जीवन भाषा में लिखा गया हो।"[1]

जाति प्रथा के कारण बदतर जिंदगी जीने वाले दलित समाज के दुख दर्द की व्यथा कथा को बयान करने में दलित साहित्य हमेशा सफल हुआ है। क्योंकि साहित्य के पास वह शक्ति है जिससे वे पाठकों के मन को छुएं, उनकी सोच विचार पर प्रकाश डालें। उदाहरण के रूप में हम ओमप्रकाश वात्मीकी की आत्मकथा 'जूठन' को ले सकते हैं, जिससे शायद हर व्यक्तिपरिचित होंगे। दलितों का जीवन कितना कठिन और शोचनीय है कि प्रस्तुत आत्मकथा से गुज़रने से प्रत्येक व्यक्ति उसे समझ सकते हैं। दलितों को कीड़े मकोड़ों की तरह समझने वाले समाज का चित्रण यहाँ उकेरा गया है। जूठन का प्रकाशन बीसवीं सदी के अंतिम

समय में हुआ था। उसके बहुत पहले से दलितों की दुर्दशा को विभिन्न कवियों और कहानीकारों ने पाठकों के सामने लाने की कोशिश की है।

दलित साहित्य को पढ़ने पर हम यह भी समझ सकते हैं कि बच्चे भी इसके चंगुल से बच नहीं पाए हैं। दलित परिवार में जन्म लेने वाला बच्चा अपने बालाधिकार एवं मानवाधिकार से वंचित रहते हैं। स्वतंत्र भारत और परतंत्र भारत की तुलना करने पर हम यूँ कह सकते हैं कि बहुत ही कम मात्रा में दलितोद्धार हुआ है। पुराणों में चित्रित एकलव्य और कर्ण की जिंदगी और आज के दलित बच्चों की जिंदगी में अधिक फर्क नहीं है। हालांकि वातावरण में अंतर जरूर हुआ है। पहले भी उन्हें शिक्षा पाने से वंचित देखते थे और आज भी। वर्तमान समय के उदाहरण के रूप में हम जयप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'हरिजन' को ले सकते हैं। प्रस्तुत कहानी के दो नन्हें पात्र हैं बल्लूराम का बेटा अब्बू और बेटी रज्जो, जो दलित हैं। उनके परिवार के वातावरण पर प्रकाश डालते हुए कहानीकार लिखते हैं कि "बल्लूराम और उसकी पत्नी लिछ्मा गांव में झाड़ते बुहारते। बदले में गांव के उंची पिछड़ी और अन्य जातियों से पहनने को उतरन, खाने को रूखी-सूखी रोटियाँ मिलती। उसीसे वे अपना गुजारा करते। नकद नारायण के दर्शन तब ही होते थे जब खेतों में कटाई होती या गाँव में किसी के मकान या कमरों का निर्माण होता। बल्लूराम वहाँ जाकर मजदूरी कर लेता तो हाथ में कुछ रुपये दिखते।"[2]

यहाँ चित्रित बल्लूराम का परिवार और उनके परिवेश एक आम दलित परिवार का है। जूठन खाकर, उतरन पहनकर जिंदगी के दो छोरों को एक साथ लाने में दिन-रात कोशिश करने वाले आम दलित परिवार। छह साल का रज्जो और पाँच साल का अप्पू इस परिवार के दो बच्चे हैं जिनके इर्दगिर्द 'हरिजन' नामक कहानी का इतिवृत्त घूमता है। अपने बच्चों की ज़िंदगी संवारने के लिए वे उन्हें पढ़ाना लिखाना चाहते हैं। उन्हें काम धंधा सिखाने को वे तत्पर नहीं है। लेकिन समाज की सोच ऐसी नहीं है। उनको रौब जमाने के लिए तथा घर और खेत में काम करने के लिए उन्हें लोग चाहिए होते हैं। अगर दलित भी पढ़ लिखकर उनके समान बड़ी बड़ी कुर्सियों पर बैठ गया तो ये काम कौन करेंगे? तभी तो लिछ्मा जिस घर में काम पर जाती है वहाँ की मालकिन कहती है- "अरि लिछ्मा इन्हीं थोड़ा बहुत काम धंधा करना सीखाया कर। बड़े हो कर उन्हें भी तो यही काम करना है।"[3]

इस प्रसंग से हम यह भी देख सकते हैं कि यहाँ जिन बच्चों को काम सिखाने की बात चल रही है वे बच्चे केवल पाँच साल के हैं। ये नन्हे बच्चे अपना बचपन जीना शुरू ही किया है कि उनसे काम करवाने के लिए लोग सोच रहे हैं। दलित होना ही इन सबके पीछे का एकमात्र कारण है। जजमानियां को इन बच्चों के प्रति एक और शिकायत रहती है। वह है "ये हमारे बच्चों को छूते हैं। कभी यह आंगन में पड़े सामानों को छूते हैं। बच्चों को कितनी बार नहलाए - धुलाए।"[4]

लोगों के मन में दलितों के प्रति जो मनोभाव है उस और यहाँ प्रकाश डाला हुआ है। जिस स्वतंत्र भारत में हम रह रहे हैं जहाँ सबको समान रूप से अधिकार मिलने का कार्य कानून करता है वहाँ के एक आम नजारे को कहानीकार यहाँ उकेरा है। इनसान को कुछ भी करते वक्त ऐसा जरूर ध्यान में रखना चाहिए कि उनके द्वारा किया हुआ कार्य दूसरों के दिल को ठेस न पहुँचाएँ। लेकिन प्रस्तुत कहानी की जमानियाँ अपनी नौकरानी और उनके बच्चों को जानवरों से भी घिनौना समझते हैं जिनके छूने से इंसान ही नहीं आंगन में पड़े सामान तक अछूत हो जाते हैं। यह घटना घटते वक्तजमानियाँ अपने बच्चों पर अवश्य रोक लगाई होगी कि दलित बच्चों के साथ न खेलें। उनके संग समय व्यतीत न करें। लिछ्मा भी अपने बच्चों को समझाई होगी कि उच्च जाति वालों से दो कदम दूर ही रहना। उनको कभी भी छूने की जुर्रत ना करना। दोस्ती तो बिल्कुल भी नहीं। हमें इस बात की ओर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है कि यह पिछले जमाने की किसी सुनी सुनायी कहानी नहीं है। बल्कि वर्तमान समय में हमारे बीच एक घटना हो रही है। इस तरह की घटनाओं से दोनों वर्ग के बच्चों में अवश्य दूरियाँ आ जाएँगी। इन परिस्थितियों से गुजरते बच्चों में जाति प्रथा का प्रभाव अवश्य रहेगा जिससे वे ताउम्र बंधे पड़ेंगे।

कहानी आगे बढ़ती हैं तो अपने बच्चों को पढ़ाने की चाहत रखनेवाले लिछ्मा और बल्लूराम उन्हें गाँव के प्राइमरी स्कूल में डाल देता है। लेकिन वहाँ भी इन बच्चों को अवहेलना ही झेलनी पड़ती है। उन्हें कक्षा में सबसे पीछे, दूसरे बच्चों से अलग बिठाया जाता है। मास्टर जी का ध्यान उनपर रत्ती भर भी नहीं था। उस कक्षा के माहौल को व्यक्त करते हुए कहानीकार लिखते हैं कि "कोई भी बच्चा उनका दोस्त नहीं बनता। उल्टे सब बच्चे उन्हें भंगी भंगी कहकर चिढ़ाते। उस समय उसकी कोमल ग्रीवा शर्म से

झुक जाती। सब बच्चे उन से बचकर निकलते........ स्कूल में खेलते-कूदते, भागते दौड़ते या भीड़ भाड़ में स्कूल का कोई बच्चा उन दोनों बहन भाई से छू जाता तो सब बच्चे उसे भी चिढ़ाते भंगी से छू गया रे उस समय वह बच्चा भी अछूत सा हो जाता।"[5]

दलित बच्चों की दुर्दशा इस प्रकार शर्मिंदा होने तक सीमित नहीं है। हर छोटी-बड़ी बातों में उन्हें दूसरों से अलग या दूर रखते हैं।दोष उनका हो या किसी और का लेकिन दलित बच्चे को ही हर बार दोषी ठहराया जाता है। उन्हें ही सजा भुगतनी पड़ती है। एक ही गलती अगर सवर्ण करें तो वह अनजाने में हो जाने वाला होता है और अवर्ण करें तो वही गलती जानबूझकर होनेवाला होता है। यह 'डबल स्टैंडर्ड' वाली नजरिया नहीं हो तो और क्या है? समाज के नजरों में शायद दलित इंसाफ का हकदार ही नहीं है। समाज में दलितों के प्रति जो अन्याय हो रहा है, उसका जीवंत चित्रण पाठकों के सामने लाने में जयप्रकाश वाल्मीकि सफल हुए हैं। उनकी कहानी का एक प्रसंग कुछ इस प्रकार है; अब्बू और रज्जो के स्कूल के वार्षिकोत्सव में स्थानीय एमएलए साहब का मुख्य भाषण था। कहानीकार उस भाषण के चंद शब्दों को और उसके बाद हुई घटनाओं को दर्शाते हुए हमें एक बात बताना चाहते हैं कि दलितोद्धारण कितनी किताबी बातें हैं। वे लिखते हैं कि उसे भी एमएलए साहब का भाषण सुनने का मिल गया। वे बोल रहे थे बच्चे भगवान का रूप होते हैं, इनमें जात, पात धर्म आदि का भाव नहीं होता। लड़ते हैं, झगड़ते हैं, थोड़ी देर बाद फिर मिल बैठते हैं। आपस में भी कोई वैर भाव नहीं पालते हैं। बच्चे भगवान की तरह निर्विकार होते हैं। हमें इनमें ऐसी ही भावनाओं का अच्छे से विकास करना है। स्कूलों में अध्यापक लोग ही इसे अच्छे ढंग से कर सकते हैं। ये बच्चे देश का भविष्य हैं। कल का भारत इन्हीं से बनेगा। इसलिए हमारी सरकार ने इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर बच्चों की बेहतरीन जीवन के लिए स्कूल में दोपहर के भोजन की व्यवस्था की है और सभी के लिये शिक्षा के अधिकार का कानून भी बनाया है। इस कानून के तहत अमीर गरीब और सभी जाति, धर्म इसके सभी बच्चों को आसानी से शिक्षा मिलने लगी है। एमएलए साहब के भाषण पर दो तीन मास्टर और ग्राम पंचायत के पंच सरपंच आदि लोग करतल ध्वनि से हर्ष प्रकट कर रहे थे।"[6]

स्थानीय एमएलए का भाषण सुंदर अवश्य था। उन्होंने बड़ी बड़ी बातें भाषण के दौरान कहीं। लेकिन असल में जहाँ बच्चों को भगवान मानना चाहिये वहाँ उन्हें अछूत कहकर भगा दिया जाता है। निष्कलंक बच्चों के मन में जातिप्रथा की बेड़ियों को मानो इंजेक्ट किया जाता है। दलित बच्चों के मन में हीन भावना लाने में समाज की भरी पूरी कोशिश लगातार होती रहती हैं। ताकि उनके बोध मन में ही नहीं अबोध मन में भी खुद के दलित होने का अहसास ताउम्र बना रहें। यह प्रक्रिया उनके जन्म से शुरू होती है। इसलिए तो भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों के बाद भी दलित स्वतंत्र नहीं हो पाए हैं। वे आज भी अपने अधिकारों से वंचित होकर शोषण का शिकार बने रहे हैं। दलितोद्धार की बातों को हम किताबी बातें अवश्य कह पाएंगे। इसका उदाहरण हैं एम एल ए साहब की बड़ी बड़ी बातों पर करतल बजाने वाले मास्टर और सरपंच के आगे का रवैया। कहानी में चित्रित दलित बच्चे एमएलए की 'हम सब एक है' वाले भाषण के बाद दोपहर के भोजन के लिए सबके साथ बैठ गया तो तब तक एमएलए की बातों से पूर्णतया सहमति दिखाने वाले मास्टरजी बस पलक झपकते असहमत हो गया। कहानीकार लिखते हैं कि निरीक्षण के दौरान एक मास्टर ने इन दोनों बहन- भाई को पंगत में बैठा देखा तो क्रोध में तप्त उसका चेहरा ताम्रवर्णी हो उठा। आंखों में लाल लाल डोरे उभरने लगे, माथे की त्यौरियां चढ़ गईं। वह तेज कदमों से उनके पास आकर छड़ी से उन्हें सटासट मारने लगा। "स्साले भंगी की औलाद! तुम्हारी हिम्मत कैसे हो गयी सब बच्चों के बीच में बैठने की।"[7] एमएलए की बातों में तो सब बच्चे भगवान का रूप थे। उनकी बातें खत्म होते ही दलित बच्चे भगवान से सीधे स्साले भंगी की औलाद बन गई। केवल मास्टरजी को ही नहीं हेडमास्टर और सरपंच को भी वे बच्चे गलत थे। दलितों के लिए तो शायद यह अवहेलना एक आदत बन गई है। दलित होने उनके पैरों में पड़ी ऐसी बेड़ी है जिन्हें वे चाहकर भी निकल नहीं सकती।

हमारे समाज में जाति प्रथा कितनी प्रबल है इस ओर प्रकाश डालने वाली एक और उरस्पर्शी कहानी है ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित 'शवयात्रा'। इसमें दलित होने के कारण एक बच्ची बेइलाज मृत्यु का वरण करने की घटना को चित्रित किया है। बल्हार जाति जो निम्नजाति की श्रेणी में आती है, के होने के कारण उनका इलाज कराना डॉक्टर के लिए मंजूर नहीं था। सभी मरीजों का इलाज बिना भेदभाव के करने का वादा देकर चिकित्सा क्षेत्र में आए डॉक्टर शायद निम्नजातिवाला इंसान नहीं होता

होगा। इसीलिए सलोनी के पिता कल्लन की मिन्नतें डॉक्टर साहब के लिए कुछ भी न था। "नहीं.... यहाँ मत लाना.... कल से मेरी दुकान ही बंद हो जाएगी। यह मत भूलो तुम बल्हार हो।"[8]

यहाँ डॉक्टर के लिए किसी के जान से ज़्यादा कीमती था अपना धंधा। लोग कितना भी पढ़ा लिखा आदमी हो लेकिन जाति एक ऐसा विष है जो लोगों के मन में घर कर बैठा हो और उतरने का नाम ही न लें। चातुर्वर्ण्य तो चार प्रकार के हैं। लेकिन उसके अंदर अंदर और भी कई प्रकार के भेद हैं जिनमें उच्चतर वाले निम्नतर वालों को घृणा से देखे जाते हैं। वाल्मीकि जी की शवयात्रा ऐसी ही एक कहानी है। चमर निचले तबके के जातिवाला है जो अपने से उच्चजाति वाले का शोषण सह कर आगे बढ़ रहे हैं। लेकिन वे लोग भी अपने से निचले जातिवाले से उसी प्रकार का व्यवहार दिखाने में नहीं हिचकता, जिनसे वे बचना चाहते हैं। एक बच्ची बीमार होकर बीच रास्ते में ही अपना दम तोड़ लिया। लेकिन विडंबना की बात यह है कि कोई भी राहगीर उसकी मदद के लिए आगे नहीं आयी। जाति के सामने लोग कितने निर्दय होते हैं, किस प्रकार इंसानियत की एक बूंद भी उनमें विशेष नहीं होती उसका उत्तम उदाहरण है सलोनी के दाह संस्कार में आए लकड़ियों की समस्या। एक छोटी बच्ची की दाह संस्कार के लिए लकड़ी देने से लोगों ने इंकार किया तो उसके परिवार वाले लकड़ी जुटाने में असफल हो गया। इन घटनाओं से लेखक यह दिखाना चाहते हैं कि दलितों की जिंदगी कितनी दुस्साह और यातनाएँ भरी है।

दलित बच्चों का संघर्ष जन्म से शुरू होता है। उनकी ज़िंदगी के हर पड़ाव में उन्हें अनीतियाँ सहनी पड़ी हैं। दलित बाल जीवन चित्रित करने वाली हर कहानी इसका नमूना है। डॉ मनोरमा गौतम की 'छल के बावजूद' कहानी में भी हम इस विषय को देख सकते हैं। कहानी का पात्र रामलाल होनहार एवं होशियार लड़का था। विद्यालय में वह प्रथम आता था। लेकिन उच्चजाति वाले मास्टरजी उससे कदापि खुश न था। एक होशियार अवर्ण बच्चे को स्कूल में हुए अनुभवों को रेखांकित करते हुए लेखिका लिखती हैं कि "ठाकुर मिट्ठु सिंह गाहे बगाहे कोई न कोई मौका ढूंढ रामलाल की छड़ी से पिटाई कर अपनी खुन्नस उतार ही लेते थे, किंतु इतने भर से ही उनकी आत्मा को शांति नहीं मिलती थी। ये बात उन्हें जरा भी बर्दाश्त नहीं होती थी कि हरिजन का बेटा प्रथम आए। रामलाल को फेल करने के उद्देश्य से वे कठिन से कठिन प्रश्न बनाते थे ताकि वह हल न कर पाए और उंची जाति के लड़कों को पहले ही प्रश्नों के बारे में बता दिया करते थे।"[9]

पिछले जमाने में बच्चों को पढ़ाने वालों को गुरु कहते थे। भारतीय संस्कारों के मुताबिक माता और पिता के बाद गुरु आता था। उनका स्थान ईश्वर से भी उंचा था। लेकिन आजकल पढ़ाने वाले को हम गुरु नहीं कह पाएंगे। वे लोग केवल अध्यापन ही करते है। उनका काम बच्चों को पुस्तकीय शिक्षा देने तक सीमित हो गया। मूल्य तो वर्तमान समाज में विलुप्त होते जा रहे हैं। रामलाल के साथ ना इनसाफी करनेवाले अध्यापक ठाकुर मिट्ठु सिंह को हम मूल्यहिन व्यक्तिमान सकते हैं। अगर मूल्य समझाने वाला ही खुद उस से अनभिज्ञ है तो क्या करें। प्रगति की दिशा में हम इतनी दूर आगे बढ़ चुकी है कि आजकल एआई का युग आ गया। इसीलिए हमें पूराने संकुचित विचारों एवं नजरियों को बदलना चाहिए। दलित भी इंसान है । दलित बच्चे भी अन्य बच्चों की तरह बाल सुलभ अधिकार भोगने के हकदार हैं। इसलिए लोगों की दृष्टिकोण में बदलाव लाना अति आवश्यक है। आज तक अनेक महान हस्तियों ने दलितोद्धार के लिए, उन्हें अपने हक दिलवाने के लिए सामने आए हैं। लेकिन अभी भी शोषितों की संख्या लाखों में है। भारत की आजादी के अमृत महोत्सव के अवसर पर गुलाम बनकर जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर हुए दलित प्रत्येक स्वतंत्र भारतीयों के लिए शर्मिदाजनकवाली बात है। भारत तभी पूर्ण रूप से स्वतंत्र बनेंगे जब सभी भारतीयों को स्वतंत्रता मिलेगी। जाति प्रथा पारतंत्र्य का प्रतीक है। इसकी बेड़ियों को तोड़ना प्रत्येक भारतवासियों का धर्म है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. एन सिंह; दलित साहित्य के प्रतिमान; पृष्ठ 23
2. हाशिए की आवाज; अगस्त 2021; पृष्ठ 31
3. वही; पृष्ठ 31 4. वही पृष्ठ 31
5. वही पृष्ठ 32 6. वही पृष्ठ 33
7. वही पृष्ठ 33
8. डॉ जयमोहन एम ऐस; आज की कहानी; पृष्ठ 43
9. हाशिये की आवाज; जनवरी 2022; पृष्ठ 36

शोधार्थी
श्री शंकराचार्या संस्कृत विश्वविद्यालय,
कालटी

हिंदी मलयालम की चुनी हुई कहानियों में मूल्यहास

डॉ.जे अजिताकुमारी

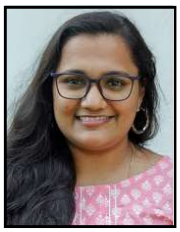

इंसान को संसार के सबसे महत्वपूर्ण प्राणी की संज्ञा दी गई है। इंसानियत, विश्वास, आस्था, चीजों को जानने, समझने, सोचने, परखने की बुद्धि उसे अन्य जंतुओं से अलग करती है। वह बात कर सकता है,,एक दूसरे के जज्बातों को समझ सकता है,परस्पर सुख दुख में भागीदार भी हो सकता है। लेकिन वर्तमान समाज का मनुष्य अपनी जड़ों से कटा हुआ है । वह न खुद को समझ पाता है न अपने समाज को।

जिंदगी हमें कुछ देती है तो हमसे काफी कुछ वापस भी लेती है। जिंदगी की तेज रफ्तार हमसे हमारे रिश्ते-नाते,छोटी छोटी खुशियां सब छीन ली जाती है, जो हमें दूसरों से अलग करती है। वर्तमान समाज का मनुष्य अपने जज्बातों से वंचित होता हुआ,खुद की, अपनी जिंदगी की भी कदर करना भूल गया है। जिंदगी में साथ देने वाले,ऑफिस में साथ काम करने वाले, कक्षा में साथ पढ़ने वाले को देने के लिए आज प्रत्येक व्यक्ति के पास वक्त नहीं है, लेकिन 24 घंटे फेसबुक पर अनजान लोगों से दोस्ती बनाने और ट्वीट करने में हमने रिकॉर्ड कायम किया है। आज जब संपर्क के माध्यम दिन पर दिन बढ़ते जा रहे हैं,लोगों में साथ होने और साथ रहने की इच्छा अपना दम तोड़ रही है।

हर तबाही,हर झूठ,हर बुराई और बदनामी आज न्यूज़ है, प्रत्येक चैनल की टीआरपी बढ़ाने का साधन। वर्तमान समाज में झूठ बिकता है,सच नहीं। हमारी सामाजिक परंपरा साथ होने,साथ रहने से आगे बढ़ती है, लेकिन वर्तमान स्थिति में यदि सुधारना लाया गया तो समय की रफ्तार में फस कर हमारी सामाजिक परंपरा अपना दम तोड़ देगी क्योंकि जितने शर्म के पर्दे लोग बंद कमरों में हटाने से झिझकते हैं,उन्हें कैमरा के सामने हटाने में हिचकते नहीं, इसलिए आज सेक्स से लेकर आत्महत्या तक महज़ नाम कमाने की चीज बनती जा रही है।

प्रस्तुत अवस्था की ज्वलंत मिसाल देने वाली कहानियाँ है विनु एब्रहाम जी का 'बबीता रमेश अवतरिषिक्कुन्नु' और आकांक्षा पारे काशिव जी का' शिफ्ट, कट्रोल, ऑल्ट उ डिलीट'।

'बबीता रमेश अवतरिषिक्कुन्नु' में लेखक ने वर्तमान समाज में व्याप्त उदासीनता,बदलते जीवन मूल्य और ,इंसान से दूर होती इंसानियत आदि का पर्दाफाश किया है। प्रसिद्ध कहानी में बबीता एक मलयालम फोन इन प्रोग्राम की आकर है। उसे अपने मलयालम को अंग्रेजी लिबास में ओढ़ दिया है। वर्तमान समाज में व्याप्त दिखावे को बबीता के जरिए जाना समक्ष में रखा गया है। एक दिन बबीता के प्रोग्राम में प्रेटीना नाम की लड़की का फोन आता है,जो एक गाने की मांग करती है। बातों ही बातों में प्रेटीना बताती है कि वह एक एचआई वी पेशेंट है, और आधे घंटे में खुदकुशी करने वाली है। यह शंकर बबीता का यह कहना कि 'इट ईस हाईली इंटरेस्टिंग ' और यह तक पूछना कि वह कैसे खुदकुशी करने वाली है,वर्तमान समाज की भीषण अवस्था की और हमारा ध्यान खींचती है। व्यंग्यात्मकता से प्रस्तुत इस कहानी में आत्महत्या जैसी नाजुक अवस्था को भी बाजारु बनाने की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है। बीच रास्ते पर मरे पड़े हुए व्यक्ति का फोटो लेकर फेसबुक पर अपलोड करना,उसने भी अनेक के लाइक आना इंसान से दूर होती है इंसानियत के साथ-साथ जिंदगी में सोशल मीडिया की दखलअंदाजी का भी चित्रण करते हैं।

प्रस्तुत अवस्था को एक अलग तरीके से हमारे सामने रखने में आकांक्षा पारे काशिव भी खरी उतरती है। अपनी कहानी' 'शिफ्ट कंट्रोल ओल्ड ' के ज़रिए उन्होंने सोशल मीडिया के कारण तबाह होने वाली जिंदगियों का चित्रण किया है। प्रस्तुत कहानी का नायक और खलनायक एक एक ही व्यक्तिहै, सॉफ्टवेयर इंजीनियर सुदीप। वीडियो गेम खेलने से खुद को रोकने वाली अपनी पत्नी अनुप्रिया

का सर बेसबॉल की बैट से फोड़ देता है,उसके टुकड़े-टुकड़े कर फ्रीजर में बंद कर देता है और फेसबुक पर मैसेज करता है। जब पुलिस उसे पकड़ लेती है तब पुलिस को इस बात का पता चलता है कि कॉलेज के समय से ही सुधीर एक ऐसा व्यक्तिरहा है जो सिर्फ कंप्यूटर स्क्रीन के माध्यम से दुनिया को समझना चाहता है। सुदीप उन लाखों युवकों का प्रतिनिधित्व करता है जो मशीनी मानव बनते जा रहे हैं। ऐसे लोग सिस्टम को नहीं सिस्टम उन्हें ऑपरेट करता है। तनाव को कम करने के अनेक उपाय होने के बावजूद लोग खुद को हमेशा तनावग्रस्त अवस्था में डाल रहे हैं। इस हत्या को चैनल वाले खूब उछलते हैं। मशीनी मानव नाम से भी लोग सुदीप को मशहूर बना देते हैं। अंत में सभी को फांसी की सजा मिलती है ।आखिरी ख्वाहिश के बारे में पूछे जाने पर वह कहता है:-"अ..... श्योर तो नहीं पर कहीं इंटरनेट कनेक्शन होगा क्या? निंजा गेम का फिफ्त पार्ट आने वाला था,सोच रहा हूं एक बार चेक कर लेता।" प्रस्तुत कथन यह समझाने के लिए काफी है कि सुदीप को अपने किए पर न तो पछतावा है और ना ही वह शर्मिंदा है । उसे तो इस बात की भी समझ नहीं कि उसने अपनी पत्नी के साथ साथ अपनी जिंदगी से भी पलायन किया है।

मीडिया लोगों को सिर्फ घटना चाहिए,वह किसी को अपकीर्ति प्रदान करने का क्यों न हो या किसी संवेदनहीन दारुण हादसा ही क्यों न हो ।प्रति समाज की अवस्था ऐसी हो गई है कि इंसान को एक दूसरे के साथ बैठकर बात करने तक की फुर्सत नहीं है और अगर है तो भी वह करना नहीं चाहता। तेज रफ्तार से तालमेल बनाने की होड़ में इंसान अपनी जिंदगी,जवानी और वक्तको गलत जगह खर्च करता है ।

इन दोनों कहानियों में हम देख सकते हैं कि जिंदगी में माध्यमों की दखलअंदाजी बढ़ती जा रही है। जन्म से मौत तक आज दिखावे और बिकाउ चीज बनती जा रही है । लेकिन किसी भी बड़े हादसे या घटना की उम्र एक दिन से ज़्यादा की नहीं होती। संस्कारों, मूल्यों और इंसानियत से अलग होते मनुष्य को अच्छे बुरे की परख नहीं। बदनामी के जरिए ही सही नाम कमाने की प रीति का बढ़ना,हत्या और खुदकुशी करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना इंसान की दहशत का पर्दाफाश करते हैं। जाने अनजाने हम भी इसी अवस्था का हिस्सा बनते जा रहे हैं।

साहित्य का उद्देश्य सदा ही सामाजिक सत्य का उद्घाटन करना रहा है । वह सच जिसे देख कर भी लोग अनदेखा करते हैं। साहित्यकार वर्तमान समय के साथ-साथ भविष्य के प्रति भी जागरूक रहता है क्योंकि वर्तमान समय में होने वाले सभी प्रकार के परिवर्तनों का असर आने वाली पीढ़ी पर ही ज्यादा दृष्टिगोचर होता है।

वर्तमान समाज में या वर्तमान समय में जो अलगाव की भावना लोगों में पैदा हो रही है उसे जन्नत समक्ष में रखने में प्रस्तुत दोनों कहानियां खरी उतरती नजर आती हैं ।इस भीषण अवस्था को पाठकों के सामने रखने में साहित्य का सफल नजर आते हैं क्योंकि वह हमेशा अंतिम फैसला सही और गलत को चुनने का मौका प्रत्येक व्यक्ति पर छोड़ते हैं । बदलते समय के साथ मनुष्य का बदलाव स्वाभाविक है। लेकिन इसकी भी एक सीमा होनी जरूरी है । प्रसिद्ध कहानियों के माध्यम से कहानीकार हमें वर्तमान अवस्था से वाकिफ कराने के साथ-साथ इस बात की ओर भी हमारा ध्यान खींचना चाहते हैं कि हमें असल में किस तरह की जिंदगी चाहिए ।समाज से जुड़ी हुई या कटी हुई, रिश्ते नाते जज्बातों को अहमियत देती हुई या उन्हें दुत्कारती हुई। या ऐसा कहना ज्यादा संगत होगा कि क्या हम अपनी पूरी जिंदगी इंसान बनकर जीना चाहते हैं या इंसान के रूप में वहशी जानवर बनकर ।

संदर्भ ग्रंथ

1. मलयालचेरुकथा साहित्य चरित्रम् डॉ .एम .एम .बशीर
2. शिफ्ट कंट्रोल ओल्ड डिलीट ,आकांक्षा पारे काशिव

असिस्टेंट प्रोफसर
हिंदी विभाग, निर्मला कॉलेज
मूवाट्टुपुझा

भारतीय संस्कृति : स्वरूप एवं विशेषताएँ

डॉ.सुधा.टी

सीखे हुए व्यवहारों की सम्पूर्णता को सामान्य अर्थ में 'संस्कृति' कहते हैं । जितनी भी मानवीय परिस्थितियाँ हमें चारों ओर से प्रभावित करती हैं, उन सभी की सम्पूर्णता को हम संस्कृति कह सकते हैं। अनेक विद्वानों ने संस्कार के परिवर्तित रूप को ही संस्कृति स्वीकार किया है।मानव समाज के धार्मिक, दार्शनिक, कलात्मक, नीतिगत विषयक कार्य-कलापों, परम्परागत प्रथाओं, खान-पान, संस्कार आदि के समन्वय को संस्कृति कहते हैं। मनुष्य की अमूल्य निधि उसकी संस्कृति है। संस्कृति एक ऐसा पर्यावरण है, जिसमें रहकर व्यक्तिएक सामाजिक प्राणी बनता है,और प्राकृतिक पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता अर्जित करता है।लेकिन संस्कृति की अवधारणा बहुत विस्तृत है। इसलिए उसे एक वाक्य में परिभाषित करना सम्भव नहीं है।

परिभाषाएँ

जवाहरलाल नेहरू के मत में -' 'संस्कृति का अर्थ मनुष्य का आन्तरिक विकास और उसकी नैतिक उन्नति है, पारम्परिक सद्व्यवहार है और एक-दूसरे को समझने की शक्तिहै।"

टी.एस.इलियट के अनुसार-"शिष्ट व्यवहार, ज्ञानार्जन, कलाओं के आस्वादन इत्यादि के अतिरिक्त किसी जाति की अथवा वे समस्त राष्ट्रीय क्रियाएँ एवं कार्य-कलाप, जो उसे विशिष्टता प्रदान करते हैं, संस्कृति के अंग है।"

रामधारी सिंह दिनकर के मत में - "संस्कृति मानव जीवन में उसी तरह व्याप्त है, जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध और दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता, युग-युगान्तर में संस्कृति निर्मित होती है।"

संस्कृति का स्वरूप : संस्कृति का स्वरूप साहित्य में सबसे अधिक अर्थपूर्ण तरीके से अभिव्यंजित होता है। सुरुचि और शिष्ट व्यवहार के अर्थ में संस्कृति शब्द का प्रयोग किया जाता है। संस्कृति साहित्य का प्राण है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में संस्कृति के प्रभाव को देखा जा सकता है। यहाँ की संस्कृति के आधारभूत मूल्य दया, करूणा, प्रेम, शांति, सहिष्णुता, लचीलापन, क्षमाशीलता इत्यादि को भारतीय साहित्य में समुचित तरीके से अभिव्यक्ति दी गयी है। भारतीय संस्कृति का यह समन्वित रूप संस्कृत भाषा के माध्यम से रामायण, महाभारत, गीता, कालिदास-भवभूति-भास के काव्यों और नाटकों, के माध्यम से बार-बार व्यक्त हुआ है। तमिल का संगम साहित्य, तेलुगु का अवधान साहित्य, हिंदी का भक्तिसाहित्य, मराठी को पोवाड़ा, बंगला का मंगल नीति आदि भारतीय उद्यान के अनमोल फूल हैं। नेहरू संस्कृति के लिए अर्थ इस प्रकार देते हैं -Culture means some internal development in man. It also means behavior towards others, ability to understand others and to be understood by others. One who lacks these qualities lacks knowledge and intelligence. His mind and culture are narrow.

भारतीय संस्कृति की वर्तमान दशा

ग्रामों के राष्ट्र भारत वर्ष की मूल संस्कृति ग्राम्य संस्कृति है। भारतीय संस्कृति का नूतन आयाम ब्रिटिश साम्राज्य की नींव के साथ प्रारंभ हुआ। इस काल में सभ्यता ने संस्कृति को दबाने की चेष्टा की। अतः संस्कृति का यथार्थ स्वरूप उभर नहीं सका।इस युग में सामाजिक आचार-विचार पर पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव पड़ा। संयुक्त कुटुंब प्रथा के स्थान पर परिवारों का पृथक्करण होने लगा। 'आज भारतीय गाँव सांस्कृतिक संक्रमण के दौर से गुजर रहे हैं जिससे सांस्कृतिक दृष्टि से उनकी ग्रामीणता संदिग्ध हो गई है । जिस तरह पतंग, दीपक की ओर लपकता है, ठीक उसी तरह गरीब विलासिता की ओर लपकता है।"[1]

भारतीय संस्कृति विश्व संस्कृतियों में है, लेकिन आज विश्व में कोई भी संस्कृति इस रूप में सुरक्षित नहीं है जैसे भारतीय संस्कृति। किसी भी देश की संस्कृति से उस राष्ट्र की उन्नति एवं अवनति का पता चलता है। संस्कृति मानव के भौतिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक शक्ति का द्योतक है। संस्कृति व्यक्तिका सर्वांगीण विकास करने में सहायक है। व्यक्ति का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण राष्ट्र एवं विश्व का कल्याण संस्कृति पर निर्भर है। संक्षेप में इस प्रकार कह सकते हैं- 'संस्कृति सभ्यता के सूक्ष्म उदात्त

तत्त्वों के रचनात्मक विकास एवं पल्लवन का नाम है।'आधुनिकतावाद की अवधारणा का समाज में आना आसान हो गया। वैश्वीकरण और आधुनिकरण के मध्य में गहरा संबंध है। जब भारतीय संस्कृति का स्वरूप आधुनिक हो गया तब निश्चित दिशा में होने वाले परिवर्तन भी दिखाई देने लगे।

बुद्धिवाद, विवेकीकरण और उपयोगितावाद आदि दर्शन का उदय संस्कृति का नया स्वरूप बन गया जिसमें प्रगति की आकांक्षा, विकास की आशा और परिवर्तन के अनुरूप अपने आपको ढालने का गुण होता है।आधुनिकता की जड़ें यूरोपीय पुनर्जागरण से जुड़ी हैं। कला और विज्ञान की नवीन साधना का श्रीगणेश हुआ तो राजनीतिक तथा समाज-व्यवस्था में मौलिक क्रांति का सूत्रपात भी हुआ। अतः इसके परिणामस्वरूप पश्चिमी यूरोप एवं एशिया (भारत) में एक नवीन चेतना का संचार हुआ। 'भारत का गौरव, उसकी परंपराएँ, उसकी संस्कृति, उसकी अस्मिता इसी अनेकता में छिपी एकता में अंतर्निहित है और इन सबकी अभिव्यक्ति का प्रबल माध्यम बना है विविध भाषाओं में रचा हमारा समृद्ध वाड्मय।"[2]

प्रौद्योगिकी विकास के कारण सभी क्षेत्रों में बुनियादी परिवर्तन हुए। इसके परिणामस्वरूप समाज की एक विशिष्ट स्थिति को प्रदर्शित करनेवाली अवधारणा बनी।महिला को उचित स्थान मिला। अर्थात् बदली हुई संस्कृति में महिलाओं के प्रति सोच बदली अब उसे सशक्तिकरण की ओर ले जाने के प्रयास किये जाने लगे। कई आंदोलन व चर्चाओं का सहारा लिया गया। इस प्रकार सांस्कृतिक, मानववादी व व्यक्तिवादी स्वरूप देखने को मिला।

मानव के विकासशील एवं सृजनात्मक स्वभाव पर बल देते हुए धर्म एवं तर्क, विज्ञान एवं धर्म का ही नहीं, वरन प्राच्य एवं पाश्चात्य विचारधाराओं के समन्वय का प्रयास किया गया।संस्कृति के नए स्वरूप में गाँवों की संस्कृति को छोड़कर शहरीकरण देखा गया। इस पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। शहरीकरण से पलायन भी देखा गया। इस प्रकार लोग पुरानी संस्कृति को छोड़कर आधुनिक संस्कृति को अपनाने लगे।

भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। सिन्धु घाटी की सभ्यता के विवरणों से भी प्रमाणित होता है कि आज से लगभग पाँच हज़ार वर्ष पहले उत्तरी भारत के बहुत बड़े भाग में एक उच्च कोटि की संस्कृति का विकास हो चुका था। भौगोलिक दृष्टि से भारत विविधताओं का देश है, फिर भी सांस्कृतिक रूप से एक इकाई के रूप में इसका अस्तित्व प्राचीनकाल से बना हुआ है।

विश्व की अनेक संस्कृतियों- बेबीलोनिया, मिस्र, क्रीट, यूनान असीरिया में भारतीय संस्कृति सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसकी पृथक विशेषता रही है जैसे प्रचीनता जहां विश्व की अन्य संस्कृति समय के साथ गर्त में दब गई और समाप्त हो गई। लेकिन भारतीय संस्कृति अपनी हजारों साल पुरानी प्राचीनता के साथ आज भी निरन्तर अग्रसर है। भारतीय संस्कृति ने मानवता के विकास को अपना परम लक्ष्य माना। विश्व बन्धुत्व की भावना को अपनाते हुये इसने सभी धर्मों बौद्ध, जैन, हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई - के अनुयायियों को शरण दी । आज भारत में सभी जाति- ब्राह्मण, जैन, हिन्दू, ईसाई, मुस्लिम, तुर्क सभी निवास करते हैं लेकिन धर्म या मजहब को लेकर कभी कोई विवाद नहीं हुआ है। भारतीयों ने कभी कट्टरता को नहीं अपनाया बल्कि सौहार्दपूर्ण विदेशियों के अच्छे सिद्धान्तों को सहृदय अपनाया यही ग्रहणशीलता उसकी महत्त्वपूर्ण विशेषता भी है। "प्राचीन संस्कृति में चिन्तन एवं कला का केन्द्र मानव रहा, जो स्वाभाविक ही था। जैसे-जैसे मानव नाम के प्राणी की बौद्धिक शक्तिविकसित हुई होगी, उसने अपने-आपको ही केन्द्र बनाकर सोचना शुरू किया होगा।"[3]

भारतीय संस्कृति का स्वरूप सदा से ही ग्राम्य प्रधान रहा है। आज भी भारत की 80 % जनता गांवो मे ही वास करती है। यद्यपि यहां नगरों तथा महानगरों का विकास हुआ परंतु वे भारतीय संस्कृतियों के आधारभूत ग्राम्य स्वरूप पर कोई विशेष प्रभाव नही डाल पाए। गांव के महत्व के कारण ही गांधी जी ग्राम्य उत्थान पर बल देते थे। यह पूर्णतया सत्य है कि गांवो का उत्थान किए बिना राष्ट्र का उत्थान नही हो सकता। वास्तव मे गांव भारतीय समाज की आत्मा ही नही है वरन् भारतीय संस्कृति को युग-युगों से सुरक्षित रखने और यहाँ की सभ्यता को चिरस्थायी बनाए रखने मे भी इनकी भूमिका सर्वविदित रही है।

भारतीय संस्कृति उदार, ग्रहणशील एवं समय के साथ परिवर्तनशील रही है। अनेक विदेशी संस्कृतियाँ इससे

टकरा कर नष्ट हो गयी या इसी का अंग बन गयीं। यहाँ पर शक, कुशान हूँण, पठान, मुसलमान, पारसी , यहूदी, ईसाई सभी आये और सभी ने यहाँ की संस्कृति को पुष्ट किया। भारतीय संस्कृति इस अर्थ में समन्वित संस्कृति है। यह तो सुन्दर फूलों का गुलदस्ता है। सर्वधर्म स्वभाव हमारी संस्कृति की विशेषता है।

भारत की सांस्कृतिक विविधता में एकता

'विविधता में एकता सदैव भारतीय संस्कृति का विशिष्ट गुण रहा है। नई संस्कृति के निर्माण के अपने प्रयत्न में हमें इसे एक उद्देश्य बनाना चाहिए। यदि हम सफल होते हैं तो हम केवल अपनी समस्या का समाधान नहीं करेंगे, बल्कि हमारा उदाहरण दुनिया की आज की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या के समाधान में सहायक हो सकेगी ,अर्थात राष्ट्रों की विविधता में मनुष्यों की परस्परिक एकता स्थापित करना है।"[4]

आज हम अपने अतीत पर दृष्टिपात करें तो विविधता के बीच एकता स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिये गए अनेक घटक देख सकते हैं। ऐसा ही एक प्रमुख घटक भारतीय समाज की 'संगठनात्मक प्रणाली' है। प्रारंभ से ही इस प्रणाली ने भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमियों से आने वाले लोगों के सामाजिक एकीकरण की सतत् प्रक्रिया को निर्बाध चालू रहने दिया है। इसके अलावा सामाजिक गतिशीलता बनाए रखने के लिए आवश्यक स्थान और व्यक्तिगत, घरेलू, धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्वतंत्रता भी दी है। इतिहासकार राधाकुमुद मुखर्जी ने बताया है कि इसने लंबे समय तक भारतीय समाज के एकात्मक स्वरूप की निरंतरता को सुनिश्चित किया है। इसी प्रकार इसने प्रारंभ से ही स्थानीय को क्षेत्रीय के साथ और क्षेत्रीय को राष्ट्रीय के साथ, परिवार, विवाह और बंधुता जैसे संस्थागत साधनों के माध्यम से जोड़ने पर जो बल दिया है, उससे विशाल भारतीय समाज का क्षेत्र व्यापक होता गया और अंततः उसने समस्त देश को अपने में समाहित कर लिया।

सामाजिक वैज्ञानिक अध्ययनों से यह पता चला है कि भारतीय परिवारों के ढाँचे में भी कई तरह की विविधताएँ हैं, जो वैवाहिक संबंधों, माता-पिता,संतान- संतति, संबंधों और सहोदर भाई-बहन संबंधों पर निर्भर होती हैं, तथापि यह तथ्य कोइनकार नहीं किया जा सकता कि कई सदियों से अनेक सिद्धांत, जैसे अपने निकटतम पारिवारिक वृत्त से बाहर विवाह करना,एक संयुक्त परिवार में रहना, बुजुर्गों की देख-भाल करना और बाल-बच्चों के प्रति स्नेह रखना, पारिवारिक आय को सबकी भलाई में खर्च करना, पर्वोत्सवों को मिलकर मनाना, पारिवारिक अनुष्ठान मिलकर करना और अपने परिवार के नाम को अपनाना एवं आगे तक ले जाना आदि भारतीय परिवार प्रणाली के प्रतिमान (सन्नियम) बन गए हैं, जो इसे एकात्मक स्वरूप प्रदान करते हैं। इसी प्रकार, 'चिरसम्मानित जजमानी' व्यवस्था जो सामाजिक समूहों को सेवाओं, वस्तुओं और उपहारों के आदान-प्रदान के माध्यम से एक-दूसरे के साथ बाँधे रखती है और भारतीय समाज को एकजुट रहने और संस्कृति को फलने-फूलने देने में सहायक सिद्ध हुई है। वस्तुतः न भारतीय गाँव में जो समष्टिवाद (सामूहिक रूप से रहने) का भाव पाया जाता है, वह भी बहुत कुछ इस प्रणाली का सच्चाई से पालन किए जाने के कारण ही है। यदि ऐसा नहीं होता तो न भारतीय समाज उन उग्र (झिंझोड़नेवाले) परिवर्तनों को झेल नहीं सकता था, जो इतिहास में लंबे अरसे तक आते रहे हैं।

भारत की भौगोलिक संस्कृती की सबसे प्रमुख विशेषता, यह तथ्य है कि उत्तर के पर्वतीय क्षेत्र और दक्षिण प्रायः द्वीप के पूर्वी और पश्चिमी घाटों को छोड़कर सम्पूर्ण देश में मैदान और निचले पठार हैं, जिनमें बड़ी नदियों का जल प्रवाहित होता है ।

निष्कर्ष :

यह स्पष्ट रूप से उल्लेखनीय है कि भारत में कभी भी एक ही संस्कृति पूर्ण रूप से व्याप्त नहीं रही और न ही शायद किसी भी बड़े प्रदेश में कभी एक ही संस्कृति रही है। इस देश में आध्यात्मिक संस्कृति की प्रमुखता रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1 पृ .सं 93 ग्रामीण विकास पत्रिका,राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान (हैदराबाद)

2 पृ.सं 5 भाषा पत्रिका,जुलाई अगस्त 2002 केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, भारत सरकार

3 पृ. सं 20 पाश्चात्य काव्यशास्त्र, डॉ. तारक नाथ बाली

4 पृ. सं 174 भारत की राष्ट्रीय संस्कृति (एस . आबिद हुसैन) नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

असिस्टेंट प्रोफसर
हिंदी विभाग, एस.जी.ओ.यू कोल्लम

‘मुन्नी मोबाइल’ उपन्यास में सामाजिक चिंतन

डॉ.कविता मीणा

समाज को बेहतर बनाने के लिए उपन्यासकार को अपने समय के समाज के संघर्ष से जुझना होता है। समाज जिन परिस्थितियों से होकर गुजरता है उससे जीवन मूल्यों में बदलाव होता है। समाज की इस वास्तविकता को यथार्थवादी दृष्टिकोण से कृतिकार कृति में अभिव्यक्त करता है वरिष्ठ पत्रकार, कवि एवं लेखक प्रदीप सौरभ निर्भीक रूप से समाज की सच्चाइयों को उजागर करने वाले रचनाकार के रूप में जाने जाते है। लीक से हटकर लिखने वाले लेखक प्रदीप सौरभ ने अपने समकालीन समाज की अनेक ऐसी सच्चाइयों को उजागर किया जिनको बेबाक ढंग से चित्रित करने का साहस बहुत कम रचनाकारों में होता है। ‘मुन्नी मोबाइल’ उपन्यास में प्रदीप सौरभ ने भारतीय समाज के विविध पहलुओं से जुड़े हुए यथार्थ का चित्रण किया है। सांप्रदायिक दंगों से लेकर बाजारवादी संस्कृति, मीडिया, कॉल सेंटर, स्त्री तथा महानगरीय जीवन से जुड़ी अनेक पत्रकार के दृष्टिकोण से देखते हुए उनसे जुड़े विभिन्न पहलुओं को भी चित्रित किया है उपन्यास के अंतर्गत लेखक ने समाज के बिगड़ते हालातो को प्रस्तुत करने के साथ-साथ समाज के जटिल यथार्थ को अपने अनुभव के धरातल पर अभिव्यक्ति दी है। हिंदी के सुप्रसिद्ध कथाकार रवींद्र कालिया ने उक्त उपन्यास के विषय में कहा है कि - “मुन्नी मोबाइल’ समकालीन सच्चाइयों के बदहवास चेहरों की शिनाख्त करता उपन्यास है। धर्म, राजनीति, बाजार और मीडिया आदि के द्वारा सामाजिक विकास की प्रक्रिया किस तरह प्रेरित व प्रभावित हो रही है, इसका चित्रण प्रदीप सौरभ ने अपने मुहावरेदार रवां-दवां भाषा के माध्यम से किया है। प्रदीप सौरभ के पास नए यथार्थ के प्रामाणिक और विरल अनुभव है इनका कथात्मक उपयोग करते हुए उन्होंने यह अत्यंत दिलचस्प उपन्यास लिखा है।”[1] लेखक प्रदीप सौरभ की निर्भीकता इस बात से साबित हो जाती है कि गुजरात दंगों की बेबाक रिपोर्टिंग के लिए उन्हें पुरस्कृत किया गया स्वतंत्रता पश्चात से लेकर अब तक अनेक वर्गगत, जातिगत एवं सांप्रदायिक दंगे एवं टकराहट भारतीय समाज में हुए हैं जिनके दुष्परिणाम समाज के लिए घातक ही रहे। कुछ असामाजिक तत्व आज भी समाज में हिंदी मुस्लिम संप्रदायों के बीच दंगों की आग सुलगाने का कार्य करते हैं। आज भी धर्म, जाति की अग्नि में मानवीयता झुलस रही है। बढ़ती मूल्यहीनता ने मानवीय रिश्तों को ध्वस्त करने का कार्य किया है। इस उपन्यास में लेखक ने भारतीय समाज में घटी ऐतिहासिक घटनाओं - बाबरी मस्जिद ध्वंस, गोधरा कांड के समय हुए मजहबी दंगों में अपराध और अनैतिकता का जो मंजर वर्णित किया है वह समाज में सांप्रदायिक वैमनस्य की वास्तविकता को प्रस्तुत करता है। गुजरात दंगों के दौरान मानवीयता का नाइंसाफी चेहरा उपन्यास की इन पंक्तियों में स्पष्ट देखा जा सकता है - “स्वास्थ्य सेवाएँ भी सांप्रदायिक आधार पर बंट गई थीं। वी एस अस्पताल में मुसलमान घायलों को रखा गया था, तो सिविल अस्पताल पहुँचे उसके भाई को दंगाइयों मे एंबुलेंस से उतार कर पीटा उसके पेट पर दर्जनों चाकू के घाव कर दिए गए दंगाई चीख रहे थे - इनको इलाज का कोई हक नहीं है। इन्होंने हमारे लोगों को मारा है।”[2] सन् 2002 में हुए गोधरा कांड (गोधरा में साबरमती एक्सप्रेस रेलगाड़ी के कोच में हिंदू कारसेवकों को जिंदा जलाने की घटना) से जुड़े गुजरात दंगों में हिंदू-मुस्लिम संप्रदायों में जिस तरह द्वेष, हिंसा तथा धर्मांधता का माहौल समाज में फैला उस परिवेश के लिए जिम्मेदार कारकों को उद्घाटित करते हुए उपन्यासकार ने जन-जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का जीवंत चित्रण प्रस्तुत किया है। नैतिक हीनता, राजनीतिक छल-छद्म को यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत करते हुए लेखक ने तात्कालीन समाज के बदहवास हालातों के प्रति संवेदनशीलता प्रस्तुत की। लेखक के अनुसार भारतीय समाज तभी तरक्की करेगा जब इस देश में हर नागरिक को निर्भय वातावरण मिलेगा। इन ऐतिहासिक घटनाओं से जुड़ी मजहबी टकराहट

को उपन्यास में प्रस्तुत करने के पीछे शायद लेखक का उद्देश्य भी यही रहा होगा कि इस तरह की घटनाओं कि पुनरावृत्ति न हो इसके प्रति भारतीय समाज सचेत एवं जागरूक रहें।

चूंकि प्रदीप सौरभ पत्रकार रहे हैं तो उन्होंने एक पत्रकार की दृष्टि से भारतीय समाज में घटी इन ऐतिहासिक घटनाओं के विविध पहलुओं को जांचा एवं परखा है। उन्होंने इस उपन्यास के मुख्य पात्र आनंद भारती को एक निर्भीक पत्रकार के रूप में प्रस्तुत किया जिसमें स्वयं लेखक प्रदीप सौरभ का व्यक्तित्व परीलक्षित होता है। समाज को सचेत एवं जागरूक करने में मीड़िया की भूमिका क्या भूमिका होती है? मीड़िया की आंतरिक बनावट किस तरह की होती है? मीडिया पर पड़ने वाले दबाव तथा उसके द्वारा फैलाए जाने वाली अफवाहों का यथार्थ उन्होंने उपन्यास में वर्णित किया है। आनंद भारती पात्र के माध्यम से लेखक ने इस उपन्यास में यह स्पष्ट किया कि गोधरा कांड जैसे सांप्रदायगत दंगों की वास्तविकता का खुलासा करने में मीडिया की भूमिका कमजोर ही रही। उपन्यास में आनंद भारती एक निर्भीक पत्रकार होने के कारण गुजरात दंगों के पीछे के कारनामों का खुलासा करने का अभियान छेड़ता है तो उसे डराया जाता है, उसी गुमनाम चिट्ठियों के माध्यम से धमकियाँ मिलती है उसे गुजरात छोड़कर भागने की सलाह दी जाती है। आनंद भारती के अनुसार उस समय समाज में अफवाह फैलाने में मीडिया की भूमिका अधिक नज़र आ रही थी। उपन्यास की निम्न पंक्तियाँ तात्कालीन मीडिया का यथार्थ प्रस्तुत कर रही है - "असल में आज़ादी के बाद विकसित हुआ देश का मीडिया बाजार की रखैल बन गया। उसके पास न तो कोई सपना है और ना ही समाज के प्रति कोई प्रतिबद्धता। वह एक उद्योग में तब्दील हो चुका है लाभ कमाना और सत्ता के गलियारों में दबाव बनाना उसका एकमात्र उद्देश्य है।"[3] उपन्यास के अंतर्गत आनंद भारती का मीडिया को लेकर जो असंतोष हो वह कहीं न कहीं वर्तमान मीडिया का यथार्थ प्रस्तुत करता है यह सच है कि स्वतंत्र भारत में मीडिया का काफी विकास हुआ है लेकिन आज भी अनेक बार सामाजिक उत्तरदायित्व को निभाने में उसकी वह छवि नजर नहीं आती जिसकी अपेक्षा भारतीय जनमानस करता है "इन दिनों मीडिया का यथार्थ आम आदमी के सरोकारों से कटा हुआ दिखाई दे रहा है मीड़िया की भूमिका आज उस थकी हुई मिट्टी की तरह है जो पता नहीं कभी भी ज्यादा बारिश से आयी बाढ़ में बह जाये। आज मीडिया के यह संचार एवं प्रसारण माध्यम किस समाज की सृजन की अभिव्यक्ति कर रहे हैं? यह प्रश्न हर आम जागरूक आदमी के मन-मस्तिष्क में कई तरह के कौतूहल भरे प्रश्न खड़े करते हैं।"[4]

बाजारीकरण एवं भूमंडलीकरण के इस दौर में भारतीय समाज का परिदृश्य बहुत अधिक प्रभावित हुआ हैं। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप व्यक्ति की महत्वाकांक्षाएँ बढ़ रही है। पिछले कुछ सालों में भारतीय समाज में व्यक्ति के जीवनाचार में तीव्रता से बदलाव देखने में आ रहा है। पीढ़ियों के बीच अंतराल तेजी से बढ़ रहे हैं। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के नैतिक पक्ष कमज़ोर हो रहे हैं तथा भोगवादी संस्कृति का असर समाज पर अधिक दिखाई दे रहा है। स्त्री हो या पुरुष अधिक से अधिक धन प्राप्त करना उनके जीवन का उद्देश्य बन गया है। सारी समाज व्यवस्था अर्थ केंद्रित बनती जा रही है। लेखक ने सामाजिक परिवेश की इस वास्तविकता को आनंद भारती के चिंतन के माध्यम से उद्घाटित करते हुए उपन्यास में लिखा है - "वह मानते थे कि मौजूदा सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति में तरक्की के मायने लंबी कार, बड़ा बंगला है। पैसा ही माई-बाप है और पैसे को कोई साधारण आदमी सही-गलत काम किए बगैर हासिल नहीं कर सकता है।"[5] आज की पूंजीवादी समाज की आवश्यकता के पहलुओं को लेखक ने बड़ी बारीकी से चित्रित किया है। उपभोक्तावादी संस्कृति की चकाचौंध के परिणामस्वरूप समाज में स्त्री का भी एक नया रूप दृष्टिगोचर हो रहा है। बाजारवाद, भौतिकवाद का प्रभाव स्त्री के जीवन पर इस कदर पड़ रहा है कि स्त्री जीवन का एक ऐसा यथार्थ समाज में देखने को मिल रहा है जो अचंभित कर देने वाला है। उपन्यास में दूसरी मुख्य पात्र मुन्नी उर्फ बिंदू के माध्यम से लेखक ने स्त्री का एक

नवीन रूप पाठक के समक्ष प्रस्तुत करना चाहा है। मुन्नी मोबाइल बिहार के एक छोटे से गाँव बक्सर की रहने वाली है। वह अपने परिवार के साथ दिल्ली के पास साहिबाबाद में रहने लगती है आनंद भारती जैसे अभिजात्य परिवारों में झाड़ू पोछे का कार्य करती है। वह एक मेहनती महिला है। लेकिन वह एक महत्वकांक्षी औरत है अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए मुन्नी जब से दिल्ली आई तब से तरक्की प्राप्त करने के लिए विभिन्न रास्ते तलाश करती रही उसने एक अवैध गर्भपात केंद्र में एजेंट का काम भी किया उसकी बढ़ती महत्वाकांक्षाएँ और बाजार की चकाचौंध उसे एक सेक्स रैकेट चलाने वाली महिला बना देती है। सेक्स रैकेट का दलदल उसकी मौत का कारण तो बनता ही है। उसकी बेटी रेखा चितकबरी को भी इस गलत धंधे में ले आता है। "मुन्नी की आकांक्षाओं पर दिन प्रतिदिन फैलते जा रहे थे उसमें तरक्की करने की भूख इतनी प्रबल हो गई थी कि अब उसे सही-गलत में अंतर भी नहीं समझ आता था उसे जो चाहिए वह चाहिए। उसके लिए रास्ता क्या हो, इसपर वह नहीं सोचती थी।"[6] वर्तमान समाज में उपभोक्तावादी प्रवृत्ति स्त्री हो या पुरुष उसके जीवन पर हावी हो रही है। समाज में अब वो परंपरागत मूल्य खत्म हो रहे हैं, तरक्की प्राप्त करने की होड़ मची हुई है हालात यह हो गए हैं कि भारतीय संस्कृति व मूल्यों के प्रति संवेदनशीलता भारतीय समाज में धीरे-धीरे खत्म हो रही है। बाजारवाद के चलते और पाश्चात्य सभ्यता के अधिक हावी होने के कारण समाज में सामंजस्य की भावना निरंतर खत्म होती जा रही है। व्यक्ति आगे बढ़ने के लिए दूसरे व्यक्ति को दबाना चाहता है। प्रतिस्पर्धा का स्थान ईर्ष्या व हिंसा ने ले लिया है। समाज में अपराध जगत का यह सच इस उपन्यास में हमें दिखाई देता है। मुन्नी की मौत का कारण भी यह तरक्की प्राप्त करने की भूख तथा आपसी ईर्ष्या ही होती है। सेक्स रैकट पर कब्जा जमा लेने के कारण ही मुन्नी की हत्या करवा दी जाती है। चिंतनीय मुद्‌दा यह है कि भौतिकवादी प्रवृत्ति के कारण आज समाज का सांस्कृतिक पतन हो रहा है। विशेषकर नई पीढ़ी पुराने मूल्यों को तेजी से खारिज कर रही है। वर्तमान युवा पीढ़ी जल्द से जल्द अपने सपनों को पूरा करना चाहती हैं, अपने सपनों को पूरा करने के लिए भारतीय संस्कृति के अनुसार अनैतिक माने जाने वाले रास्तों को अपना रही है। कुछ युवा अपनी उच्च महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए तो कुछ समाज में बिगड़ रहे आर्थिक हालातों के कारण आज देह व्यापार तक से जुड रहे हैं। उपभोगतापरस्त ग्लैमर एवं विलासिता से पूर्ण रास्तों के आगे उन्हें पैसे कमाने का कोई अन्य रास्ता अच्छा नहीं लग रहा है। ऐसे नवयुवकों के लिए रिश्तों में आत्मीयता का कोई मूल्य नहीं रह गया है। विवाह को लेकर आज की युवा पीढ़ी का एक अलग ही दृष्टिकोण हमें देखने को मिल रहा है। वह इसे मात्र एक सामाजिक समझौते की दृष्टि से दिखने लगी है उक्त उपन्यास में लेखक प्रदीप सौरभ ने कॉल सेंटर में काम करने वाले नवयुवकों का जीवन यथार्थ परिलक्षित हुआ है - "सेक्स कॉल सेंटरों में काम करने वाले लड़के-लड़कियों के लिए नैतिकता से जुड़ी चीज़ नहीं है लिव इन रिलेशन आम है यही नहीं कहीं कहीं लड़के-लड़कियाँ एक ही फ्लैट लेकर साथ रहते हैं आपस में लडकियाँ भी बदलते रहते हैं उनके बीच आम तौर पर कोई फायदा नहीं होता मौज-मस्ती ही इन रिश्तों का आधार होता है। आज़ादी से जीने वाली कई ऐसी लड़कियाँ आनंद भरती को मिली है जो ऐसे रिश्तों में शामिल हैं। आज भौतिकता की चपेट में आ रहा व्यक्ति अपने भौतिक लिप्साओं की पूर्ति के लिए अपराध का भयावह खेल खेलने लगा है यही कारण है कि आज भारतीय समाज में अपराध और अपराधियों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। हालात इस तरह बिगड़ रहे हैं कि महानगरों में चलने वाली बसों पर भी आज स्थानीय गुंडों का कब्जा रहता है। महानगरों की इस वास्तविकता को भी लेखक ने उपन्यास में उद्‌घाटित किया है - "दिल्ली और एनसीआर में कोई भी बस मालिक अपने दम पर बस नहीं चलाता है। हर टर्मिनल पर वहाँ के स्थानीय गुंडों का कब्जा है उनकी मर्जी के बिना उस रूट की बस नहीं चलती है। आमतौर पर बस परमिट लेने के बाद बस मालिक इन्हीं गुंडों के हवाले बस कर देते हैं और एक बंधी बंधाई रकम में ही उन्हें संतोष

करना पड़ता है।"8 निरंतर बढ़ रहे इन अपराधों के कारण समाज में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो रही है। इन बढ़ते अपराधों एवं आपराधिक मनोवृत्ति वाले लोगों पर लगान लगाने के लिए आवश्यक है कि प्रशासन, पुलिस सख्त कदम उठाए। लेकिन विडंबना यह है कि अनेक बार पुलिस प्रशासन से जुड़े हुए अधिकारी भी परेतत रूप से इन आपाराधिक घटनाओं में लिप्त नजर आते हैं। अपराधियों से उनकी सांठ-गांठ रहती है ऐसे पुलिसकर्मी न तो अपराधियों की रिपोर्ट दर्ज करते हैं न ही ऐसे लोगों के खिलाफ़ उचित कार्यवाही करते हैं।

अंततः कहा जा सकता है कि प्रदीप सौरभ का साहित्य वर्तमान साहित्यकारों एवं समाज के लिए प्रेरणादायक है। समाज में परिवर्तन लाने की एक नवीन दृष्टि और एक नवीन मूल्यबोध लेखक स्थापित करता है। 'मुन्नी मोबाइल' उपन्यास में लेखक ने पिछले लगभग दो दशकों में घटित भारतीय समाज के विविध पहलुओं का यथार्थ अंकन कर पाठक को सामाजिक परिवेश में सुधार लाने हेतु जागरूक किया है। उक्त उपन्यास भारतीय समाज को वर्गगत, संप्रदायगत संकीर्णताओं से बाहर लाने तथा समाज के विकास को एक नई राह प्रशस्त करने की सीख देता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. मुन्नी मोबाइल - प्रदीप सौरभ - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009 - पृष्ठ संख्या - कवर पेज
2. वही, पृष्ठ संख्या 27
3. वही, पृष्ठ संख्या 31
4. मीडिया देशांतर - डॉ.कृष्णकुमार रत्तु - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली - प्रथम संस्करण 2010, पृष्ठ संख्या 03
5. मुन्नी मोबाइल - प्रदीप सौरभ - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली - संस्करण 2009 - पृष्ठ संख्या 143
6. वही, पृष्ठ संख्या 105
7. वही, पृष्ठ संख्या 111
8. वही, पृष्ठ संख्या 116

सहायक आचार्य, हिंदी
राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा (राज)
E-mail : drkavitameena17@gmail.com

कविता

अनोखी ख्वाहिश

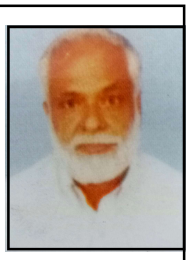

डॉ. बाबू.जे

दीप सारे बुझ जाते एक साथ
एक क्षण को ही, फैलती कमरे में
रोशनी क्षीरसागर बन कर;
बधाइयाँ भर जातीं तत्क्षण-
"हैप्पी बर्थ डे टु यू...'।
सत्तर का जन्मदिन रहते मुझे
विशेष; चार पैरों चलता शुरु
किया मैंने अब दो पैरों चलता
शरीर व मन के दर्द-पीड़ाओं का
थोक व्यापारी बन मैं आगे तीन
पैरों चलने लगूँ; हँसाती-रुलाती
यादें खिलतीं डालियाँ अंदर
रखता सूखा दरख्त मैं।
मज़बूत ताले पड़े संदूक में
बंद यादें अगरने के बनें संबल,
तो भी मरकज़ी माँग मेरी कि
कल की अपेक्षा ज्यादा पक्व
कल की अपेक्षा ज्यादा संयमी
कल की अपेक्षा ज्यादा शांत
कल की अपेक्षा ज्यादा विवेकी
बनाके भलाई का भव्य दीप
ले जाये मुझे आगे-आगे।

मोबाइल : 9447020924

मधु काँकरिया की कहानियों में धार्मिक यथार्थ : विभिन्न आयाम

अतुल्या.ए

वर्तमानकाल में धर्म के स्वरूप में परिवर्तन आया है। आज धर्म के नाम पर समाज में अनेक अत्याचार एवं समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। हिंदी की प्रमुख महिला लेखिका मधु काँकरिया जी की कई कहानियों में इन समस्याओं की अभिव्यक्तिहुई है। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से धर्म के नाम पर होनेवाले अत्याचारों के खिलाफ आवाज़ उठायी है। समाज में धार्मिक एकता स्थापित करके व्यक्ति और समाज को अनुशासन पूर्ण जीवन जीने के लिए प्रेरित करना उनका उद्देश्य है।

मधु जी की 'अन्वेषण' और 'और अंत में ईशु' आदि कहानियों का प्रमुख विषय 'धर्मांतरण' है। 'अन्वेषण' कहानी में गुंजन नामक युवती के प्रेम में पड़कर अपने पादरी जीवन को त्यागने के लिए तैयार होनेवाले फादर मैथ्यू का मानसिक संघर्ष का चित्रण हुआ है। गुंजन धर्म को केवल व्यक्तिगत विश्वास की चीज़ के रूप में मानती है। पर फादर मैथ्यू वैज्ञानिक क्षेत्र में भी धर्म के महत्व को मानते हैं। उनका कथन है- "कुछ बातें सिर्फ विश्वास की होती है.. विज्ञान के पास उनका जवाब नहीं होता। आइंस्टीन तक ने सभ्यता के परम सत्य के रूप में धर्म की सत्ता स्वीकार की थी।"[2]

इस कहानी में ईसाई धर्म के महत्व, देश-विदेशों में उसका प्रचार-प्रसार बढने का कारण आदि पर लेखिका प्रकाश डालती है- "हम मनुष्य को प्यार हैं,उन्हें चेतना संपन्न करते हैं और बड़ी रोशनी में लाते हैं। देखिये इंडिया में क्रिश्चिएनिटी सबसे पहले केरल में आई इसकी बदौलत केरल आज पूर्ण शिक्षित है। हम जहाँ जाते हैं वहाँ की संस्कृति को आत्मसात् कर लेते हैं।"[3] 'अन्वेषण' कहानी में लेखिका ने धर्मांतरण की समस्या का चित्रण करने के साथ ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार बढ़ने के मूलभूत कारण पर भी प्रकाश डाला है।

मधु काँकरिया की 'और अंत में ईशु' कहानी का भी मूल समस्या 'धर्मांतरण' है। कहानी के नायक साइंस ग्रेजुएट जैन ब्राह्मण विश्वजीत है जो नक्सलवादी आन्दोलन का कार्यकर्ता भी है। पुलिस के विद्रोह भरी दमन और भविष्यहीनता के कारण विश्वजीत की क्रान्ति की सपना टूट जाता है और वह पत्थाखोर बन जाता है। नशा की आदत की वजह से परिवार और समाज द्वारा तिरस्कृत विश्वजीत तन और मन से टूट जाते हैं। तब ईसाइयों ने उसे सहारा देकर जीवन सुधारने का मौका प्रदान किया है। फलस्वरूप ईसाई धर्म को स्वीकारने के लिए विश्वजीत तैयार हो जाता है। उसका कथन है- जो संस्कृति गिरे हुए को उठाती है, उन्हें क्षमा करना जानती है। वह चाहे जिस किसी भी कारण ऐसा करे मैं उस संस्कृति का सम्मान करता हूँ।"[4]

हिंदूवादी लोग विश्वजीत के धर्मांतरण का विरोध करते हैं। और धर्मांतरण की निर्णय से पीछे हटने केलिए उसपर दबाव डालते हैं। पर उन लोगों का विद्वेष और नाराज़गी विश्वजीत को विचलित नहीं किया और वह अपने निर्णय में अटल रहते हैं। विश्वजीत का कहना है-"आप जैसे लोग अपनी संस्कृति और धर्मांतरण को लेकर बहुत चिंतित रहते हैं। मिथक, कथाओं, स्वप्न, बिंबों और देवी-देवताओं का यह उच्च संस्कृति,काश! आप त्रिशूल बाँटने की बजाय लोगों के दुख बाँट पाती। काश! आप समझ पाती कि जो संस्कृति गिरे हुए को उठा नहीं सकती वह धीरे-धीरे खोखली हो जाती है और एक समय आता है जब समय की रेत पर उसके पद चिह्न मिट जाते हैं।"[5]

इस कहानी का शीर्षक बहुत सार्थक है क्योंकि सभी पापों से मुक्तिपाने के लिए लोग अंत में ईशु यानि ईश्वर तथा अल्लाह के शरण में ही आते हैं। जीवन के इस सत्य का उद्घाटन मधु जी ने 'और अंत में ईशु' नामक कहानी में किया है।

मधु जी की 'फाइल' नामक कहानी में कलकत्ता के सिनिआशा नामक संस्था का चित्रण हुआ है जो

स्ट्रीट चिल्ड्रेन के लिए एक आयरलेंडवासी ने बनवाया था। लेखिका कहती है- "कलकत्ता में जितनी भी नशेड़ियों, फुटपाथियों और अनाथ बच्चों, दबे कुचले बच्चों या वासना का शिकार युवतियों के लिए स्वयं सेवी संस्थाएँ हैं। वे सब ईसाइयों द्वारा स्थापित हैं। यह तो हाल है हमारे भारतीयों का जिसे पूजा-पाठ,धर्मशालाएँ,तीर्थ यात्राएँ और मंदिर निर्माण से ही कहाँ फुरसत है।"[6]

मधु जी ने इस कहानी में विदेशियों और भारतीयों के धार्मिक मूल्यों की तुलना की है। उनका कहना है भारतीयों को पूजा-पाठ से फुरसत नहीं है। इसलिए भारतीय के मन में धर्म की शुरुआत अंतर्यात्रा से होती है और परमतत्व की प्राप्ति पर ख़तम हो जाता है। पर ईसाइयों ने धर्म को गरीबों के प्रति करुणा भावना ही समझा। इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में मधु जी ने विदेशियों और भारतीयों की धार्मिक आस्था पर प्रकाश डाला है।

मधु जी की ये तीनों कहानियाँ 'अन्वेषण', 'फाइल' और 'अंत में ईशु' आपस में जुडी हुई हैं। तीनों कहानियों पर विचार करने के बाद ईसाई धर्म के मूल संदेश को हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं कि मानवीय सेवा और प्रेम से लोगों को जीवन जीने के लिए परिपूर्ण करते हुए एक ऐसा आधार प्रदान करना ईसाइयों का मुख्य लक्ष्य है, जिससे वे एकता की भावना से संगठित होकर समाज की भलाई के लिए कार्य कर सकें।

मधु काँकरिया जी ने 'भरी दोपहरी के अँधेरे' कहानी में हिंदूवादी मानसिकता पर विचार करती हुई धर्म और आध्यात्मिकता जैसी गंभीर विषयों का विवेचन किया है। आध्यात्म के ताजमहल जैन धर्म के मक्का मदीना नाम से मशहूर स्थान शिखर जी की मंदिर इस कहानी की पृष्ठभूमि है। इस मंदिर में धर्म के मुखौटा पहनकर आध्यात्मिक भाषण देकर लोगों को अंधविश्वास में डालनेवाले ढोंगी साधुओं केअसली चेहरे का खुलासा कहानी में लेखिका ने किया है। कहानी में रोज़ी-रोटी कमाने के लिए अपने जान का परवाह न करते हुए दिन-रात संघर्ष करनेवाले आदिवासी डोलीवालों की दयनीय दशा का वर्णन हुआ है। ऐसे देश में जहाँ महावीर जी का अहिंसक जैन धर्म की प्रशंसा हो रहा है, वहाँ इन जीते-जागते मानवों के प्रति कोई करुणा, ममता नहीं। शांति, अहिंसा, प्रेम और करुणा की बातें करनेवाले ये ऋषि महाराज तो असली जिंदगी में इन आदिवासी पहाड़ी डोलीवालों के प्रति कोई प्रेम या करुणा की भावना नहीं रखता क्योंकि महाराज सांसारिक पचड़ों में नहीं पड़ते। मधु जी इस ढोंगी साधुओं का विरोध करते हुए कहती है- "यह कैसा साधुत्व..कोई मर रहा है और आप संभलकर चल रहे हैं कि भूल से भी कोई कीड-पतंग पावों तले न कुचल जाए क्योंकि जीव हत्या पाप है। अहिंसा को भी इन लोगों ने कितने सीमित और संकीर्ण अर्थों में अपनाया है। जहाँ से उजाला फूटता था वहीं अँधेरा सबसे सघन था। शायद देवताओं की इस नगरी में सबके अंदर के देवता सोए हुए थे।"[7] ऐसे छोटे - छोटे उदाहरणों के ज़रिये लेखिका ने इस कहानी में जैन धर्म के कुछ मूल्यहीन आदर्शों पर प्रहार किया है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि मधु जी ने अपनी कहानियों में धर्म के विभिन्न पक्षों के खुले चित्रण के साथ- साथ विभिन्न धार्मिक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है। हिन्दू हो या इस्लाम हो या ईसाई हो सभी धर्म का मूल -आधार एवं सन्देश एक है। ये तीनों धर्म हमें सत्य, अहिंसा, प्रेम, मानवीय सेवा और एकता का पाठ सिखाते हैं। इसी शाश्वत सत्य को समझकर आपसी बंधुत्व और एकता की स्थापना करके सामजिक कल्याण करें, यही मधु काँकरिया की कहानियों का प्रमुख लक्ष्य है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. https://brainlly.in
2. भरी दोपहरी के अँधेरे मधु काँकरिया- पृ.36
3. वही-पृ.36
4. वही-पृ.137
5. वही-पृ.140
6. वही-पृ.5
7. वही-पृ.207

शोध छात्रा
हिंदी विभाग,कार्यवट्टम कैंपस
केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनंतपुरम

व्रज के भक्तिकालीन काव्य कवितावली का संदर्भ

डॉ. के. श्रीलता विष्णु

भारतीय इतिहास में एक अनुपम सांस्कृतिक संगम पन्द्रहवीं सोलहवीं सदियों में घटित हुआ था। यह सांस्कृतिक संगम अभूतपूर्व था और उसमें संपूर्ण भारत का योग रहा था। यह संगम भारतीय मस्तिष्क और हृदय के अपूर्व सम्मिलन से घटित हुआ था। उस काल में भारत भूमि के उत्तरापथ में किन्हीं प्राचीन कालों में अवतरित हुए महापुरुष समस्त दक्षिणापथ के जनमानस के लिए सुलभ आराध्य देवता हो गए और दक्षिण में आविर्भूत दार्शनिक-विचारक उत्तर भारत के परमाचार्य बन गए। उडीसा के जयदेव कवि का गीतगोविन्द दक्षिण देश के मन्दिरों में संन्ध्याकीर्तन का संगीत बन गया और केरल के लीला शुक द्वारा रचित 'श्रीकृष्णकर्णामृत' वंगदेशीय महाप्रभु चैतन्य का परमप्रिय पारायणग्रंथ हो गया। श्रीमद् भागवत और अध्यात्म रामायण की कथाएँ भारत की संस्कृत-वाहिनी अमृतधारा बनकर संस्कृत के गिरि-अंचलों से निकलकर भाषा के समतलों में फैलकर बहने लगी और भक्तिभावना ने एक सरल शीतल अनुभूति बनकर संपूर्ण जनजीवन को अप्लावित किया। इस भक्तिके पुलक स्पर्श ने भगवान की समस्त निर्गुणात्मक और सगुणात्मक मानवीय संवेदनाओं को रसासिक्त करके अभिव्यक्ति के नाना भावभूमियों में प्रसारित किया। हिन्दी में अनन्य कोटि के निर्गुणोपासक कवि कबीर प्रकट हुए और साथ साथ कृष्ण भक्त कवि सूरदास एवं राम भक्तकवि तुलसीदास उदित हुए। कुछ उसी काल में ही सुदूर दक्षिण देश केरल की भाषा में भी वात्सल्य भाव के रससिद्ध कवि चेरुश्शेरी और महान रामायणकार एषुत्तच्छन पैदा हुए थे। भारत के अन्यान्य भाषा साहित्यों में भी ऐसे ही महान कवियों का आविर्भाव उसी काल में हुआ था। उन सबके प्रभाव से भारत की राष्ट्रीय संस्कृति पूर्णतः एकात्म बन गई और देश एक हो गया। भारतीय जनता के विभिन्न भाषाओं द्वारा विभिन्न बोलियों द्वारा इस भावनात्मक जागरण और एकीभाव की मूलभूत सांस्कृतिक उत्क्रान्ति को भक्तिआन्दोलन के नाम से अभिहित किया गया है। इस आन्दोलन की लहरें भारत के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक ऐसी व्याप्त हुई थीं कि उसकी आर्द्रता और प्रभाव से कोई भी प्रदेश या कोई भी भाषा अछूता नहीं रह गया था।

ईसा की तीसरी शती से लेकर नवीं शती तक भक्त आलवारों द्वारा तमिल प्रदेश में प्रवाहित कृष्ण भक्ति कतिपय दार्शनिक विचारों का सम्बल लेकर उत्तर भारत पहुँची। उत्तर में कृष्णभक्तिका प्रचार-प्रसार व्रजमण्डल में हुआ था। वल्लभाचार्य ने व्रजमण्डल में कृष्ण भक्तिको प्रतिष्ठा दी और उसका दार्शनिक आधार शुद्धाद्वैत दर्शन है। पुष्टिमार्गी अष्टछाप के कवियों ने व्रज भाषा का पल्लवन किया। अन्तर्वेदी नाम से प्रसिद्ध व्रजभाषा के अन्य नाम 'माथुरी' या 'नागभाषा' है। इसका उद्भव सन् 1000 अर्थात हिन्दी के उद्भव के साथ ही माना जाता है। प्रारंभ में इसे पिंगल या भाखा कहा जाता था। व्रजभाषा शब्द का प्राचीनतम प्रयोग सन् 1587 ई. में गोपाल कृत 'रसविलास टीका' में प्राप्त है। दरअसल साहित्यिक भाषा के अर्थ में यह शब्द अठारहवीं शताब्दी से ही व्यापक प्रचलन में आया। व्रज शब्द का मूल प्रयोग ऋग्वेद में चरागाह के अर्थ में हुआ है। भरतपुरी, डाँगी, माथुरी, कठेरिया, गाँववारी जादोबारी, ढोलपुरी तथा सिकरवाडी इनकी उपबोलियाँ हैं।

यह तो सर्वविदित है कि कृष्ण काव्यों द्वारा व्रजभाषा की अजस्र धारा को प्रवाहित करनेवाले मूर्धन्य कवि सूरदास ही है। उनकी सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य

लहरी, सूर पचीसी, सूर रामायण, सूर साठी और राधा रसकेली आदि रचनाएँ व्रजभाषा साहित्य के उत्कृष्ट नमूने हैं। भक्तिकालीन काव्य-भाषा के सिंहासन पर व्रजभाषा को बिठाकर उसे गौरव- गरिमा प्रदान करने का पूरा श्रेय सूरदास को ही जाता है। स्वरमैत्री एवं गेयता सूर की व्रजभाषा के अलंकरण है। नगेन्द्र जी का मन्तव्य था 'व्रजभाषा को ग्रामीण जनपद से हटाकर सूर ने नगर और ग्राम के सन्धिस्थल पर ला बिठाया था। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग करने पर भी उनकी मूल प्रवृत्ति व्रजभाषा को सुन्दर और सुगम बनाये रखने की ओर ही थी। व्रजभाषा की ठेठ माधुरी यदि संस्कृत और अरबी-फारसी के शब्दों के साथ सजीव शैली में जीवित रही है, तो वह सूर की भाषा में ही है'। (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ-202) मुहावरों और लोकोक्तियों का जो सौन्दर्य व्रजभाषा में विद्यमान है उनका मणिकांचन संयोग सूर ने भ्रमरगीत में किया था।

अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी पद रचना केलिए मधुर एवं सुन्दर परिचित शब्दों से भरपूर परिमार्जित व्रज को ही तहेदिल से अपनाया था। अन्य संप्रदाय के असंख्य कवि-भक्त जैसे दक्षिण प्रान्त मैसूर में जन्मे निम्बार्काचार्य उनके शिष्य श्रीभट्ट (युगलशतक) हरिव्यास देव (महावाणी) आदि की कृतियों में व्रजभाषा का सुन्दर परिपाक दर्शनीय है। राधावल्लभ संप्रदाय के उन्नायक हितहरिवंश जी की वाणी में व्रजभाषा का प्रांजलीय सौन्दर्य निखरित है। चैतन्य संप्रदाय के रामराय (आदिवाणी गीतगोविन्द भाषा) गदाधर भट्ट (ध्यानमाला) चन्द्रगोपाल (चन्द्रचौरासी, अष्टयाम, सेवसुधा, ऋतुविहार, राधाविरह) आदि की रचनाएँ भी व्रजभाषा की माधुर्य भक्ति का भण्डार है। राधा-कृष्ण के श्रृंगार केलियों के सांगोपांग वर्णन एवं उसकी कुशल अभिव्यक्ति के लिए व्रजभाषा की भंगिमा अक्षुण्ण है। मीरा बाई के पद की भाषा राजस्थानी मिश्रित व्रज है। परन्तु कृष्णभक्तरसखान (सुजान रसखान, प्रेमवाटिका, दानलीला, अष्टयाम) की भाषा परिमार्जित साहित्यिक व्रज है। माधुर्य एवं प्रसाद गुण के सहज समावेश एवं लाक्षणिकता से ओतप्रोत व्रजबाषा इनकी कृतियों के प्राण हैं।

रामभक्तकवि गोस्वामी तुलसीदास पर व्रजभाषा और कृष्णकाव्य का अत्यधिक प्रभाव है। कवि की प्रतिभा का पूर्ण परिचायक है व्रजभाषा में रचित कवितावली, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, रामगीतावली, कृष्णगीतावली आदि रचनाएँ। तुलसी को ऐसे वैष्णव के रूप में देखे जा सकते हैं जिसमें विष्णु की व्यापकता में पूर्ण विश्वास है। अतः कृष्ण चिरत का उद्घाटन उन्होंने अपनी कृतियों में किया है। गोस्वामी जी राम और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं मानते। उन्हें अवतारवाद पर आस्था थी। समीक्षकों के अनुसार कृष्णगीतावली के कई पद सूरसागर से मिलते जुलते हैं।

तुलसी पर व्रजभाषा के प्रभाव के बारे में वेणीमाधव दास ने अपने गोसाई चरित में तुलसीदास का सूरदास से मिलाप होना सन् 1616 में लिखा है- "सोरह से सोरह लगै कामदगिरि ढिग बास।/ सुचि एकांत प्रदेश मँह, आए सुर सुदास। /कवि सूर दिखायउ सागर को।

गोसाई चरित के तहत सूरसागर तुलसीदास के हाथ में आ चुका था, इसी कारण दोनों काव्यों में समानता आ गई थी।

तुलसी का शुद्ध व्रजभाषा में निर्बन्धित उत्कृष्ट राम काव्य है कवितावली। इसका रचनाकाल सन् 1656-1650 के बीच माना जाता है। व्रजभाषा की छ्टा से कवितावली के कई प्रसंग मार्मिक बन पडे हैं। रामचरित मानस के बाद तुलसी के जितने भी ग्रंथ है, उनमें कवितावली का अन्यतम स्थान है।

ऐश्वर्य और शक्ति के अनुपम उदाहरण के रूप में राम का व्यक्तित्व कवितावली में उभर कर आया है। कृष्ण

भक्तकवियों द्वारा वैष्णव-भक्तिके भीतर भगवान कृष्ण का जो स्वरूप उपस्थित किया गया था वह मुख्यतया सौन्दर्यपूर्ण और श्रीसंपन्न था और उनके मधुर जीवन का चित्रण करके असमें सख्य भाव की भक्तिप्रकट की गई थी। लेकिन राम के चरित्र में मर्यादापुरुषोत्तम का भाव था। अतः कवितावली में दास्य भाव की भक्तिके लिए राम के चरित्र में ऐश्वर्य और शक्तिका चित्रण करना तुलसी ने आवश्यक समझा होगा। यही कारण है कि कवितावली में राम जीवन की कोमल घटनाओं से अधिक परुष घटनाएँ व्यापक रूप से चित्रित हुई हैं। फलतः इस कृति में राम की वीरता और शौर्य की मार्मिक अभिव्यक्तिहुई है। उसी प्रकार दास्यभक्तिके आदर्श राम भक्तहनुमान के शौर्य और पराक्रम का वर्णन भी बड़ी ओजस्वी व्रजभाषा में इस कृति में किया गया है।

बाल लीला के प्रसंग में तुलसीदास राम आदि चारों बालकों की मधुरता और मनोहरता में निमग्न लगते हैं। उस प्रसंग का वे इस तरह वर्णन करते हैं मानों बच्चे उन्हीं के सामने ही किलकारियाँ करते हुए खेल रहे हैं। वे उनकी शोभा से अत्मविभोर हैं और अपने मनो मन्दिर में वे सदा विहार करते रहें, यह प्रार्थना करते हैं - तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज मजुलताइ हरे। /अति सुन्दर सोहत धूरी भरे, छवि भूरी अनंग की दूरि धरें।। /दमकै दतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकै कल बाल-विनोद करें। /अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन-मन्दिर में विहरै।।

सीता स्वयंवर के प्रसंग पर तुलसी ने सीता जी का जो मुग्धा रूप खींचा है वह एकदम अनुपम बना हुआ है। नव-वधू की उत्सुकता का बड़ा मार्मिक चित्रण यहाँ पर हुआ है - दूल्ह श्रीरघुनाथ बने, दुल्ही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं। / गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढाहीं।।/ राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।/ याते सबै भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं। यहाँ प्रयुक्त 'पल टारति नाहीं' के शिलष्टार्थ का सौन्दर्य पढ़ते ही बनता है।

अयोध्याकाण्ड के वनगमन का वर्णन राम-सीता के पावन प्रेम-प्रसंगों से बड़े ही मार्मिक बने हुए हैं। एक उदाहरण देखिए - पुर तें निकसी रघुबीर-बधु, धरि-धरि दये मग में डगद्वै। /झलकी भरि भाल कनी जल की, पर सूखि गए मधुराधर वै।।/ फिर बूझती है 'चलनो अब केनिक, पर्न कुटी करिहौ कित है?'/ विय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलों जल च्वै।।

'चलनों अब केतिक' पूछ्नेवाली सीता की आतुरता कितनी मर्मस्पर्शी है और उससे प्रिय की आँखों के भर आने के वर्णन में कितनी स्वाभाविकता है। वैसे ही वन-मार्ग पर श्यामल और गौर युवकों के बीच चलनेवाली सीता से ग्राम-वधूटियाँ बड़े भोलेपन से यह प्रश्न करती हैं कि 'कहाँ साँवर से, सखि शवेर को है?' तब सीता जी द्वारा नयनों के इशारे से राम को अपना पुरुष सूचित करने में और उनके मुस्कराकर चलने में कितनी स्वाभाविकता है? इसका वर्णन कवि ने यों किया है- सुनि सुंदर बैन सुधारस - साने, सयानी हैं जानकी जानी भली। / तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें समुझाई कछू मुसुकाई चली।।

कवितावाली का लंकादहन वर्णन अपने ढंग का अकेला है। नाना भावरसों के मार्मिक चित्रण से यह दिल को बड़ी गहराई से छू लेता है। एक और वीर रस की प्रतिमूर्ति बने हुए हनुमान विकराल रूप से जलती हुई अपनी विशाल बालधी या पूँछ घुमाते हुए लंका में सब ओर आग की लपटें फैला रहे हैं और दूसरी ओर लंकावासियों की अकुलाहट और कराह आकाश को चीर रही हैं। यह प्रकरण दीनता और भय की एकान्त अनुभूति कराने में अतीव सक्षम है। जहाँ देखो वहाँ हनुमान दिखाई देते हैं। बाहर और भीतर हनुमान का रूप लंकावासी देख रहे हैं- मूँद

आँखि हीय में, उधार आँखि आगे ठाढ़ो,/धाई जाई जहाँ तहाँ, और कोउ को किए?

वे एक ओर रावण को कोस रहे हैं और दूसरी ओर करुण-क्रन्दन कर रहे हैं। राक्षस और राक्षस स्त्रियाँ अपनी अनाथ अवस्था का कैसे उद्‌गार निकाल रहे हैं - देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं, /कानन उजारयौ अब नगर प्रजारी है।।

कोमल व्रजभाषा में भयानक रस का ऐसा ज्वलन्त वर्णन समस्त हिन्दी साहित्य में अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। वाल्मीकि रामायण में इस प्रसंग का जो वर्णन है उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है - ततस्तु लडका सहसा प्रदग्धा सराक्षसा साश्वरथा सनागा। / सपक्षिसडघा समृगा सवृक्षा रुरोद दीना तुमुलं सशब्दम्।/ हा तात हा पुत्रक कान्त मित्र हा जीवितेशाडग हतं सुपुश्णम्। /रक्षोभिरेव बहुधा ब्रुविद्‌भि? शब्द? कृतो घोरतरः सुभीमः।।

ऋषि-कवि तो इतना ही यहाँ पर लिखते हैं कि घोड़ों, हाथियों, पशु-पक्षियों, रथों, राक्षसों सहित लंका सहसा जल गई और वहाँ के निवासी दीनता से तुमुलनाद करते हुए रोने लगे। यह कहकर कि हाय रे वण्णा ! हाय बेटा! हाय स्वामिन ! हा प्राणनाथ ! हमारे सब पुण्य नष्ट हो गए।

इस प्रसंग पर अध्यात्म रामायण में तो इतना ही कहा गया है कि प्रासादों में बैठी हुई दैत्य नारियाँ भी हा तात ! हा पुत्र ! नाथ इत्यादि विलाप करती हुई इधर-उधर भागने लगीं।

हा तात पुत्र नाथेति क्रन्दमानाः समन्ततः /व्याप्ताः प्रासादशिखेर प्यारूढाः दैत्ययोषितः / देवता इव दृश्यन्ते पतन्त्यः पावके खिलाः, / विभीषणगृहं त्यनत्वा सर्वं भस्मीकृत पुरम्।

मानस में भी इस प्रसंग को अत्यन्त संक्षेप में ही तुलसीदास प्रस्तुत करते हैं। एक चौपाई में ही पूरे प्रसंग को वे समेट लेते हैं। हनुमान जी अपने विशाल शरीर को बहुत ही हल्का करके एक महल से दूसरे महल पर चढ़ जाते हैं, नगर जल रहा है। लोग बेहाल हो गए हैं। आग की करोड़ों कराल लपट झपट रही है। 'हाय बप्पा, हाय मैय्या ! इस अवसर पर हमें कौन बचाएगा', यही पुकार सब कहीं सुनाई पड़ रही है। हमने तो पहले ही कहा था कि यह वानर नहीं है, वानर का रूप धर कोई देवता है। साधु के अपमान करने का यह फल है कि नगर अनाथ के घर की तरह जल रहा है। हनुमान जी ने एक ही क्षण में सारा नगर जला डाला। एक विभीषण का घर नहीं जलाया - जरह नगर भा लोग विहाला। झपट बहु कोटि कराला।।/ तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहि अवसर को हमहि उबारा।।/हम जो कहा यह कपि नहीं होई। वानर रूप धरें सुर कोई।।/ साधु अवग्या कर फलु ऐसा। जरह नगर अनाथ घर जैसा ।। / जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक विभीषण कर गृह नाहीं।।

उद्धृत इन सारे भागों से अधिक कवितावली में यह प्रसंग अत्यतिक हदयविदारक बन पड़ा है। तुलसी की कवित्व शक्तिका शतदल यहाँ पूर्ण रूप से विकच हुआ है। कवितावली में इस मर्मस्पर्शी प्रसंग को चित्रित करने के लिए अनेक छन्द लिखे गए हैं। यहाँ भयानक रस का मानों सर्वग्रासी और सर्वांगीण वर्णन हुआ है। सारे विभावों, अनुभावों और संचारी भावों की पूर्णता के कारण इस रस की तीव्र अनुभूति करने में तुलसीदास जी अत्यन्त सफल हुए हैं। इस सर्वभक्षी अग्निप्रलय में लंका मानों पिघल कर बूंद-बूंद में बदल गई है। लोग इधर- उधर भाग रहे हैं और जलकर राख हो रहे हैं। घोड़े और हाथियों में भी भगदड़ मच जाती है। सारी चीजों को, सारे प्राणियों को वे रौंद डालते हैं। स्त्रियों का हाहाकार सब ओर फैल रहा है। वे अपने लोगों का नाम ले लेकर चिल्ला रही हैं - लपट, कराल ज्वालजालमाल दहूँ दिसि,/धूम-अकुलाने, पहिचानै कौन काहि रे?/ पानी को ललात, विललात, जरे जात गात,/ परे पाइमाल जात,

भ्रात ! तू निबाहि रे।।/ प्रिया ! तू पराही ! ! नाथ, नाथ ! तू पराटि ! ? बाप,/ बाप ! तू पराहि ! ! पुन, पुन ! तू पराहि से।।

आग की कराल लपटें दसों दिशाओं में फैल जाती हैं। धुआँ ऐसा उड़ रहा है कि कोई किसी को पहचान नहीं पाता। पानी के लिए लोग लालायित होकर चिल्ला रहे हैं और इतने में शरीर जलकर गिर पड़ते हैं। कैसा आर्तनाद है! अपने प्रिय पिता और पुत्र का नाम लेते हुए अपने को बचाने की प्रार्थना करनेवाली राक्षस नारियों का दिल को विदीर्ण करनेवाला चित्र पूरे लंकादहन के प्रकरण में व्यापक रूप से अंकित है। तुलसी ने पूरी लंका को एक यज्ञकुंड कल्पित किया है और सांगरूपक से उसे बड़ा प्रभावी बनाया है। व्रजभाषा में सांगरूपक जितना जंचता है यह देखते ही बनता है।

तुलसी समिध सौंज लंका-जज्ञकुंद लखि, / जातुधान पुंगीफल जंत, तिल, धान हैं। / खुवा सो लंगूल बलमूल, प्रतिकूल हवि, / स्वाहा महा हाँकि हनै हनुमान हैं।।

लंकाकाण्ड में भी इस भयानक रस का व्यापक चित्रण हुआ है। अंगद के लंका प्रवेश के समय ऐसे ही हृदय-विदारक दृश्यों से सारी परिस्थिति अत्यन्त मर्मस्पर्शी बनी हुई है। अंगद को आते देख भय से कातर बने लोग यह समझ बैठते हैं कि मानों हनुमान ही दुबारा आए हैं और वे पुकार उठते हैं- आयो ! आयो ! आयो ! ! ! सोई बानर बहोरि, / भयो सारे चहूँ ओर लंका आए जुबराज के।

उत्तरकाण्ड यद्यपि राम-कथा के वर्णन से विरहित है फिर भी कलियुग वर्णन, काशी की महामारी का वर्णन आदि व्रजभाषा के जरिए उल्लेख्य प्रसंग कवि की मौलिक उद्भावनाओं से पर्याप्त मर्मस्पर्शिता लिए हुए हैं। यहाँ भक्ति और शान्त भाव-रसों की अपूर्व गंगा-जमुना प्रवाहित की गई हैं। काशी में संवत् सोलह सौ उनहत्तर (1669) और इकहत्तर (71) के बीच घटित हैजा की महामारी का व्यापक चित्र भी उत्तर काण्ड में वर्णित है। स्वयं तुलसीदास इस महामारी की चपेट में आए थे। वे अत्यन्त वेदना से भगवान से प्रार्थना करते हैं - मारिए तो अनायास कासीबास खास फल, / ज्याइए तौ कृपा करि निरुज सरीर हौ।।

व्रजभाषा की संपन्नता से समृद्ध कवितावली मार्मिक उदगारों और हृदय स्पर्शी वर्णनों से अत्यन्त प्रभावोत्पादक बनी है।

व्रजभाषा पर भी तुलसी के बेजोड अधिकार को मुखरित करने वाली 'कवितावली' मानस, गीतावली इत्यादि के समकक्ष सहृदयों के व्यापक आदार का भाजन बना हुआ है।

साहित्यिक दृष्टि से व्रजभाषा अन्य बोलियों की तुलना में सर्वाधिक समृद्ध है। राग- रागिनियों में पद बाँधकर संगीतात्मकता लाने में व्रजभाषा की शक्तिबेजोड़ है। परवर्ती रीतिकालीन काव्य ने व्रजभाषा को जो अलंकृत और कलात्मक रूप प्रदान किया वह भी सूर एवं तुलसी जैसे महान कवियों द्वारा भाषा को प्रौढ़ता प्रदान करने के कारण संभव हो चुका था। आधुनिक काल में व्रजभाषा का साहित्यिक महत्व यद्यपि कम हो गया है परंतु इसके प्रयोक्ताओं की कमी नहीं हुई है। व्रजमंडल ने आज भी सगर्व अपनी भाषा का प्रयोग करके भाषा-रूप को सूखने नहीं दिया है।

किसी भी देश की राष्ट्रीय एकता वहाँ की सांस्कृतिक एकता से जन्म लेती है। सांस्कृतिक एकता की जननी भाषा एवं साहित्यिक परंपरा है। कहना न होगा कि व्रजभाषा एवं उसकी साहित्यिक महत्ता ने मध्यकालीन भावात्मक एकता को कायम रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

प्रोफसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग
श्रीशंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय
कालडी, केरल-691583, मोब - 09497273927
sreelathavishnu2018@gmail.com

आत्मकथा

देवयानम्

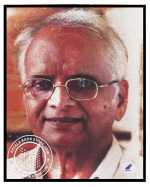

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

आठवाँ देवपद
स्यानन्दूरपुरम

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

1954-56 का समय मेरे लिए अत्यंत क्लेशपूर्ण था। इंटर-मीडियट की तैयारियाँ, घर का दायित्व, इधर-उधर की यात्रा - इस प्रकार शारीरिक एवं मानसिक संघर्षों का काल था वह। ठीक इसी समय एक महान गुरु के शिष्य बनने का सौभाग्य भी मुझे मिला था। उनका नाम था श्री पी. शेषाद्री अय्यर जो मेरे पिता जी के भी गुरु थे। वे तो श्रीरामकृष्ण और श्री विवेकानंद के भक्त थे; साथ ही विविध भाषाओं के पंडित एवं ग्रंथकार भी थे। हमारे गाँव हरिप्पाटु में ही वे रहते थे और कभी कभी पिताजी से मिलने घर आया करते थे। साथ में उनका मित्र श्री आगमानंद स्वामी जी होते थे जिन्होंने एरणाकुलम जिला के कालटी में श्रीरामकृष्ण आश्रम की स्थापना की थी। गुरु जी मुझे संस्कृत, बंगला आदि भारतीय भाषाओं के साथ अंग्रेज़ी जैसी विदेशी भाषाएँ भी सिखाते थे। इतना ही नहीं उपनिषद, रामायण, महाभारत, श्रीरामकृष्ण तथा विवेकानंद की साहित्यिक रचनाएँ इत्यादि अनेक विषय उन दो सालों की अवधि में उन्होंने मुझे सिखाया था। प्राचीन गुरुकुल की शिक्षा-दीक्षा के समान उनके घर में रह कर मैंने ये सब सीख लिए थे। अपने पितृ-वियोग के आघात से मुक्त होने तथा मन को शांत करने में उनका वात्सल्यपूर्ण उपदेश बहुत बड़ी मात्रा में मुझे सहायक हो गए थे। गुरु जी अपने बुढ़ापे में पुत्र के साथ मुंबई में रहते थे और वहीं पर 1969 में उनका निधन हो गया था। उनके अनेक पुस्तकें गुरु-पत्नी ने मुझे दी थीं।

1956 को कोट्टयम जिला के चेंगनाश्शेरी के एन.एस.एस कॉलेज में मैं भर्ती हो गया था; लेकिन बाद में तिरुवनंतपुरम के यूनिवर्सिटी कॉलेज में प्रवेश मिला तो मैंने वहाँ मलयालम साहित्य पढ़ने का निश्चय किया। वहाँ अपने श्रद्धेय गुरु श्री प्रोफसर गुप्तन नायर मेरे लिए पूर्व परिचित थे। हमारे गाँव के श्रीरामकृष्म आश्रम के समारोह में भाग लेने के लिए जब वे आये थे तब उनके साथ मेरा परिचय हुआ था। महाराज श्री स्वाती तिरुनाल ने (1813 - 1847) अपनी राजधानी तिरुवनंतपुरम में एक अंग्रेज़ी विद्यालय की स्थापना (1834) की थी जिसे बाद में आर्ट्स आण्ड सयन्स कॉलेज (Arts & Science College) बना दिया गया। केरल के विश्वविद्यालयों में यह वरिष्ट सरस्वती मंदिर प्रातः स्मरणीय एवं चिर प्रतिष्ठित है। जब मैं वहाँ भर्ती हो गया था तब वहाँ के प्रधान अध्यापक (Principal) थे विख्यात वैज्ञानिक श्री.सी.वी.रामन के शिष्य डॉ.सी.एस.वेंकटेश्वर। प्रत्येक विभाग के अध्यापक भी बड़े निपुण एवं पण्डित थे जैसे

डॉ.के.भास्करन नायर, डॉ.ए.एब्रहाम, प्रोफ.नारायण पोट्टी, डॉ.पी.के नारायण पिल्लै, प्रोफ. इळंकुळं कुंजन पिल्लै इत्यादि। हमारे विभाग की प्रमुख अध्यापिका थी प्रोफ. कोन्नियूर मीनाक्षियम्मा। उनके बाद प्रोफ. इळंकुळं कुंजन पिल्लै विभाग के अध्यक्ष हो गए थे। उनके सिवा हमारे दूसरे अध्यापक थे-एन.कृष्णपिल्लै, एस.गुप्तन नायर, प्रोफ.ओ. एन. वी.कुरुप्पु, प्रोफ. सुलोचना नायर इत्यादि। सूखते तुलसी का पौधा सींचे जाने पर जिस प्रकार उन्मिषित एवं पल्लवित हो जाता है वही हालत मेरी भी हो गई थी। नयी परिस्थितियों में आकर अपना संपूर्ण विकास होने लगा था। उस समय हमारे विभाग के अनेक विद्यार्थी मलयालम साहित्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो गए थे। उनमें प्रमुख थे - जी.विवेकानंद, के.एस.चंद्रन, के.वी.एस. इळयतु, काट्टाक्कटा दिवाकर, वेल्लायणी अर्जुन, अरीप्पऱ्ऱु एन.एन.मूसतु, पन्मना रामचंद्र इत्यादि। उनका बहुत बड़ा प्रभाव मुझ पर पड़ना बिलकुल स्वाभाविक था।

उन दिनों हमारा यूनिवर्सिटी कॉलेज सच्चे अर्थ में भगवती सरस्वती का मंदिर था। वहाँ के अध्ययन-अध्यापन की रीति दूसरे कॉलेजों की रीति से भिन्न थी। अपने हर एक महान अध्यापकों का आदरपूर्वक प्रणाम करते हुए मैं यह कहना चाहता हूँ कि उन्होंने मुझ पर बहुत बड़ी कृपा की थी जिससे मलयालम साहित्य के क्षेत्र में मैं कुछ कर सका। धन्य हूँ मैं।

कॉलेज में भर्ती होने पर अपने रहने का कोई इंतज़ाम न हो पाया था। डॉ एस.एस. मूसतु के साथ कॉलेज के पासवाले किसी घर में रहने का प्रबंध तो हो गया था; पर कुछ दिन के बाद वे अपने आगे की पढ़ाई के लिए अमेरिका चले गए। तब मैंने सचिवालय के निकट के कॉ-ऑपरेटीव हॉम में रहने का निश्चय किया। वहाँ केवल सस्येतर भोज नहीं मिलता था। इसलिए मुझे खाने के लिए बाहर जाना था जिससे खर्च बढ़ गया। हर शुक्रवार को मुझे घर जाना था और वहाँ के कामों में अपनी माँ की सहायता कर सोमवार को लौट आना था। छुट्टी के दिनों में मैं अवश्य घर जाता था।

अगले साल कॉलेज के छात्रावास में मेरा प्रवेश हुआ था। छात्रावास का प्रबंधक (warden) डॉ. भास्करन नायर थे और रेसिडेंट वार्डन (Resident Warden) थे मलयालम विभाग का अध्यापक श्री कुंजुकृष्ण पिल्लै। बी.ए. की परीक्षा में मैं सर्वप्रथम (First Rank) हो कर उत्तीर्ण हो गया था और मुझे श्री ए.आर.राजराजवर्मा तथा मुंशी श्री के. रामकुरुप्पु के नाम पर जो पुरस्कार थे वे दोनों मिले। प्रिंसिप्पल और दूसरे अध्यापकों ने इस बात पर मेरा अभिनंदन किया था। कुल मिलाकर ये सब मेरे लिए अत्यंत प्रेरणादायक सिद्ध हुआ था।

अपनी पढ़ाई के साथ ही अनेक पत्र-पत्रिकाओं में मेरे लेख प्रकाशित करते थे। उनमें प्रमुख थे - केरल-कौमुदी, केरल-ध्वनि, देशबंधु, केरल भूषण, मलयालराज्यं आदि। कॉलेज की पत्रिका में "मृत्यु, तेरा स्वागत" नाम से मेरी एक कविता प्रकाशित हो गई थी। अगले दिन छात्रावास के सह वार्डन अध्यापक श्री.सी.के.नारायण कुरुप्पु ने अपने उपदेशों से मुझे समझाया था कि अमंगल की बात मत सोचो। एक दिन की बात है। अध्यापकों ने हमें "पोन्मुड़ी" नामक प्रसिद्ध स्थान देखने ले गए थे जो प्राकृतिक सौंदर्य के लिए विख्यात है। पिकनिक के लिए

लोग वहाँ अब भी जाते हैं। उस यात्रा के अनुभवों एवं अनुभूतियों के आधार पर मैंने "पोन्मुडी और पोनकिनावु" नामक (पोनकिनावु - स्वर्णिम सपने) एक लेख लिखा था जो कौमुदी पत्रिका में प्रकाशित हो गया था। उसकी बहुत बड़ी प्रशंसा हुई थी। महात्मा गाँधी कॉलेज के उद्घाटन से संबंधित स्मरणिका में मेरा एक लेख प्रकाशित हुआ था। यह पढ़कर अध्यापकों ने मुझे आगे लिखने की बहुत बड़ी प्रेरणा दी थी। अब तो मेरे मन में यह आशा पैदा हो गई थी कि भविष्य में उत्तम साहित्यिक रचनाओं के साथ अपनी रचनाओं की भी गिनती हो जाएगी। इसी समय स्कूलों एवं पुस्तकालयों के सालाना समारोहों में भाषण देने का अवसर मुझे मिलने लगा था। हरिप्पाटु के मंदिर से संबंधित सार्वजनिक सम्मेलन में धार्मिक प्रवचन देने का सुअवसर भी मुझे मिला था। इस प्रकार एम.ए. की पढ़ाई के साथ ही मैं साहित्यिक रचनाएँ करता था और सार्वजनिक सम्मेलनो में भाषण भी देने लगा था। यह शायद हमारे कॉलेज के मलयालम विभाग के विद्यार्थियों की परंपरा सी हो गई थी।

विश्वविद्यालय का छात्रावास मेरे लिए अतीव सुविधापूर्ण था। अपना कमरा, भोजन, दोस्त सब मुझे पसंद आये थे और खर्च भी कम था। हमारा वार्डन विद्यार्थियों से प्रेम एवं दया रखते थे। उस समय हमारा रिश्तेदार श्री. वी.के.मूत्ततु अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य में अपनी एम.ए. कर रहा था, बाद में हमारे कॉलेज का ही अध्यापक हो गया था। श्री सी.पी.नायर तथा श्री विश्वनाथ भी उस समय छात्रावास में रहते थे। सी.पी.नायर बाद में सचिवालय के मुख्य सचिव (Chief Secretary) हो गया था। कुल मिला कर विश्वविद्यालय के विद्यार्थी जीवन की मीठी स्मृतियाँ मेरे लिए हमेशा नवोन्मेषशालिनी हैं।

यूनिवर्सिटी कॉलेज के शताब्दी समारोह के अवसर पर अपने विद्यार्थी जीवन के बारे में अनुस्मारक लेख की प्रतियोगिता हुई थी जिसमें मैं पुरस्कृत हो गया था। उसमें मैंने अपने पूज्य एवं अत्यंत आदरणीय अध्यापक प्रोफसर श्री गुप्तन नायर के बारे में विशेष रूप से सूचित किया था। उन्होंने अपना ग्रंथ "मनसा स्मरामि" में (Page 164) मेरे बारे में भी लिखा है। वर्षों बाद 2018 में प्रोफसर गुप्तन नायर फौण्डेशन अवार्ड मुझे दिया गया था। धन्य हूँ मैं।

छात्रावास में रहते समय शास्तमंगलम के श्रीरामकृष्ण आश्रम के साथ मेरा घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गया था। उस समय वहाँ के प्रमुख व्यक्तित्वों - जैसे श्री तपस्यानंद स्वामी, मैत्रानंद स्वामी, सिद्धिनाथानंद स्वामी, श्रीकंठानंद स्वामी, सर्गानंद स्वामी - के भाषण सुनने का सुअवसर मुझे मिला था। बचपन में मेरे मन में श्रीरामकृष्ण एवं विवेकानंद के प्रति जो भक्ति-श्रद्धा उपज आई थी वह अब और दृढ़ हो गई। अन्य आध्यात्मिक नेताओं के साथ भी मेरा परिचय हो गया था। इसके फलस्वरूप बेलूर मठम (पश्चिम बंगाल) तथा दक्षिणेश्वर (कलकत्ता) जाने का सौभाग्य मुझे मिला था। रामकृष्ण आश्रम की ओर से मेरे आध्यात्मिक ग्रंथों का प्रकाशन हुआ था। आश्रम से संबंधित मीठी स्मृतियों से मेरा मन भरा पड़ा है।

(क्रमशः)

वल्लभ विद्यानगर के सड़क पर और झोपड़ी में रहने वाले बच्चों की शैक्षिक स्थिरता के लिए बचपन एनजीओ के प्रयास पर अभ्यास

डॉ. पायल भाटिया

सार

आईपीईआर (1991) अनुसंधान रिपोर्ट में भारत के पाँच प्रमुख शहरों के सर्वेक्षण के दौरान 3,14,000 सड़क पर रहने वाले बच्चों को दर्ज किया गया, 1991 की जनगणना में 18 मिलियन बच्चों को दर्ज किया गया; यूएनएचसीएचआर, 1993 की रिपोर्ट में भारत में सड़क पर रहने वाले बच्चों की सबसे बड़ी आबादी के बारे में टिप्पणी की गई। समाज में वंचित बच्चों की स्थिति की गंभीरता को देखते हुए सरकार और विभिन्न एजेंसियों ने समाज में उनकी स्थिति, जीवन की गुणवत्ता को उपर उठाने और उनके पुनर्वास की जिम्मेदारी ली है। कई गैर सरकारी संगठन समग्र शिक्षा के माध्यम से सड़क और झुग्गी-झोंपड़ी के बच्चों के पुनर्वास के लिए काम कर रहे हैं।

1.0 प्रस्तावना

संयुक्तराष्ट्र की आम सभा (1989) ने बच्चों के अधिकारों अर्थात् जीवित रहने, संरक्षण, विकास और भागीदारी के अधिकार पर टिप्पणी की। विकास के अधिकार के तहत शिक्षा केंद्र में है और राज्य व देश दोनों की जिम्मेदारी है। किसी भी देश के लिए समाज के वंचित वर्ग तक पहुँचना एक बड़ी चिंता का विषय है। यह नए मॉड्यूल और वितरण के तरीकों को विकसित करने के बारे में पुनर्विचार की मांग करता है जो समाज के वंचित समूह की जरूरतों के अनुरूप होंगे। सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय ने वंचित बच्चों के पुनर्वास के लिए एक समग्र कार्यक्रम तैयार किया। किसी भी देश के लिए समाज के वंचित वर्ग तक पहुँचना एक बड़ी चिंता का विषय है। यह नए मॉड्यूल और वितरण के तरीकों को विकसित करने के बारे में पुनर्विचार की मांग करता है जो समाज के वंचित समूह की जरूरतों के अनुरूप होंगे। समाज में वंचित बच्चों की स्थिति की गंभीरता को देखते हुए सरकार और विभिन्न एजेंसियों ने समाज में उनकी स्थिति, जीवन की गुणवत्ता को उपर उठाने और उनके पुनर्वास की जिम्मेदारी ली है। कई गैर सरकारी संगठन समग्र शिक्षा के माध्यम से सड़क और झुग्गी-झोंपड़ी के बच्चों के पुनर्वास के लिए काम कर रहे हैं।

1.1 वंचित बच्चों की समझः सड़क पर रहने वाले बच्चे, झुग्गी झोंपड़ी के बच्चे

सड़क पर रहने वाले बच्चे

सड़क उस व्यक्तिके लिए उपलब्ध एक खुली जगह है जो घर से बाहर है। सड़क बेघरों और भगोड़े लोगों का असली घर बन जाती है, ऐसी स्थिति में जब जिम्मेदार वयस्कों से कोई सुरक्षा, पर्यवेक्षण या निर्देश नहीं मिलता है तो इन बच्चों को अपनी आजीविका के लिए विभिन्न नौकरियां करने के लिए मजबूर होना पड़ता है (यूनिसेफ, 1988)।

झुग्गी झोंपड़ी के बच्चे

अत्यधिक भीड़भाड़ वाले आवासीय क्षेत्र जिनमें जीवन की बुनियादी सुविधाओं का अभाव है। वे मूलतः सरकारी भूमि पर अवैध रूप से बसे हुए हैं। ये क्षेत्र मुख्य रूप से रेलवे ट्रैक के पास, ओवर-ब्रिज के नीचे, बाजार और औद्योगिक क्षेत्रों के पास पाए जाते हैं (कुमार,2018)।

2.0 अनुसंधान क्रियाविधि

वर्तमान अध्ययन केस स्टडी था।

2.1 समस्या का विधान

वल्लभ विद्यानगर की सड़क पर और झोंपड़ी में रहने वाले बच्चों की स्थिरता के लिए बचपन एनजीओ के प्रयास पर अभ्यास

2.2 अध्ययन का उद्देश्य

1. सड़क और झोंपड़ी के बच्चों की आजीविका गतिविधियों एवं शैक्षिक स्तर का अध्ययन करना।

2 सड़क और झोंपड़ी के बच्चों की शैक्षिक स्थिरता के लिए बचपन एनजीओ के प्रयासों का अध्ययन करना।

2.3 पद की व्याख्या

शैक्षिक स्थिरताः

इसका मतलब बुनियादी शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार

करना, मौजूदा शैक्षिक कार्यक्रमों को फिर से तैयार करना और जागरूकता बढ़ाना है।

2.4 अध्ययन की सीमाएं

1.यह केवल वर्ष 2023 तक ही सीमित था।

2.वर्तमान अध्ययन को वल्लभ विद्यानगर के सड़क और झुग्गी- झोंपड़ी क्षेत्र के बच्चों तक सीमित किया गया था।

2.5 अध्ययन के लिए नमूना

वर्तमान अध्ययन के लिए नमूना सुविधाजनक नमूनेकरण का उपयोग करके तैयार किया गया । सभी सड़क पर रहने वाले और झोंपड़ी के बच्चों (40), बचपन एनजीओ के शैक्षिक स्वयंसेवकों को वर्तमान अध्ययन के लिए एक नमूने के रूप में माना गया था।

2.6 अध्ययन के उपकरण

1. उद्देश्य-1 का अध्ययन करने के लिए, जांचकर्ताओं द्वारा सड़क और झुग्गी-झोंपड़ी के बच्चों के लिए प्रोफाइल फॉर्म विकसित किया गया था।

2. उद्देश्य-2 का अध्ययन करने के लिए शैक्षिक पाठ्यक्रम, शिक्षण के तरीकों और शैक्षिक स्तर को बढ़ाने वाली प्रश्नावली विकसित की गई।

2.7 डेटा संग्रह और डेटा विश्लेषण तकनीक

अन्वेषक द्वारा व्यक्तिगत रूप से ए.वी. रोड वल्लभ विद्यानगर जहाँ बचपन एनजीओ सड़क और झुग्गी-झोपड़ी के बच्चों के लिए काम कर रहा है, स्थानों पर जाकर डेटा एकत्र किया गया था। डेटा का विश्लेषण विषयवस्तु विश्लेषण तकनीक का उपयोग करके किया गया था।

वल्लभ विद्यानगर के सडक पर और झोंपडी के रहने वाले बच्चों की शैक्षिक स्थिरता के लिए बचपन एनजीओ के प्रयासः

- शैक्षिक स्थिरता के लिए बचपन एनजीओ पढ़ाने के लिए गतिविधि आधारित पद्धति को शामिल करते हैं और उनके साथ खेल भी खेलते हैं।
- वे उन्हें बुनियादी गणित, गुजराती पढ़ने और लिखने के कौशल और जीवन कौशल सिखाते हैं।
- वे गतिविधि आधारित शिक्षण, चर्चा, भूमिका निभाना, प्रदर्शन विधियों का पालन करते हैं।
- वे उन्हें अधिक सभ्य बनाने के लिए सहभागी दृष्टिकोण अपनाते हैं। वे उन्हें वास्तविकता, सामग्री से संभंधित चित्र भी दिखाते हैं।
- वे उनकी शैक्षिक कठिनाइयों से संबंधित परामर्श देते हैं और स्कूल में उनकी उपस्थिति बढ़ाने के लिए उनके माता-पिता को भी समझाते हैं।

3.0 समापन

सड़क और झुग्गी-झोंपड़ी के रहने वाले बच्चों का उनकी सामान्य उपस्थिति और व्यवहार के आधार पर, अधिकांश समुदायों द्वारा गर्म जोशी से स्वागत नहीं किया जाता है। समाज के लोग उन्हें भगा देते हैं और कभी-कभी उन्हें दूसरे क्षेत्रों में ले जाने के लिए उनके खिलाफ हिंसा का सहारा लेना पड़ता है। सड़क पर रहने वाले कई बच्चे आम तौर पर समुदाय द्वारा उनके साथ किए जाने वाले व्यवहार के कारण अलग-थलग महसूस करते हैं। इसलिए, कई सरकारी और गैर सरकारी संगठन सड़क और झुग्गी-झोंपड़ी के बच्चों को समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए काम कर रहे हैं।वर्तमान अध्ययन वंचित बच्चों की शैक्षिक स्थिरता के लिए कार्यरत एनजीओ के प्रयासों पर केंद्रित है।

4.0 संदर्भ सूचि

चाइल्ड हेल्प लाइन रिपोर्ट (1996). 'भारत में सड़क पर रहने वाले बच्चें' www.childlineindia.org.in/street-children-india.htm

दुबे एट. अल, 1996, एन्यू, 1986; शर्फ एट अल., 1986; रिक्टर, https://www.unicef.org/evaldatabase/files/ZIM_01-805.pdf

आईपीईआर-मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक अनुसंधान संस्थान। (1991). भारत में शहरी सड़क पर रहने वाले बच्चों की स्थितिजन्य विश्लेषण की एक समग्र रिपोर्ट

यूनिसेफ रिपोर्ट. (1993). स्ट्रीट और वर्किंग. https://www.unicef-irc.org/publications/pdf/igs_streetchildren.pdf से लिया गया

यूनेस्को रिपोर्ट. (2009). सतत विकास के लिए शिक्षा. http://www.unesco.org/education/justpublished_desd2009.pdf

आसिस्टेंट प्रोफेसर, एम.बी. पटेल कॉलेज ऑफ एजुकेशन, एस.पी. विश्वविद्यालय, वी.वी. नगर-388120, (m) 9913561148

आचार्य (B.Ed.) कॉलेज ऑफ टीचर एडूकेशन के छात्र-छात्राओं द्वारा मनाया गया 'क्रिस्तुमस' त्योहार के विविध दृश्य।

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-01-2024
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI

JANUARY 2024

Vol. No. 60, Issue No.10
Regn. No. KL/TV(S) 381/2022-2024
Price Rs. 25/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

पद्मश्री डॉ.एन.चन्द्रशेखरन नायर के 101 वें जन्म जयन्ती समारोह का उद्घाटन केन्द्र मंत्री श्री. वी. मुरलीधरन कर रहे हैं।

उद्घाटन समारोह में सभा के मंत्री दीप प्रज्वलन कर रहे हैं।

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व. मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 में मुद्रित, प्रो.डी.तंकप्पन नायर व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695 014; Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Prof.D.Thankappan Nair & Dr.Renjith Ravisailam